



हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर



A++ by
NAAC



College of
Excellence by UGC



Kaushal Kendra
by UGC



CURIE Grant
by DST



Star Scheme
College by DBT



College with 4
Gold Star Ranking by IIC

डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधन समिति, नई दिल्ली द्वारा संचालित

ISSN 2249-2895

संस्करण - 2025-2026

साहित्यावलोकन

सृजन एवं शोधपत्रिका

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

संरक्षक

डॉ (श्रीमती) एकता खोसला

प्राचार्या

सह संपादिका

डॉ ज्योति गोगिया

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

संपादिका

डॉ पवन कुमारी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

ISSN 2249-2895

साहित्यावलोकन

सृजन एवं शोधपत्रिका

संस्करण - 2025-2026

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर

साहित्यावलोकन

(सृजन एवं शोधपत्रिका)

संस्करण - 2025-2026

संरक्षक

प्रो. डॉ.(श्रीमती) एकता खोसला

प्राचार्या

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर

संपादिका

डॉ. पवन कुमारी

(सहायक प्रोफेसर)

हिन्दी विभाग

साहित्यावलोकन

(सृजन एवं शोधपत्रिका)

संस्करण - 2025-2026

मुख्य सलाहकार – डॉ. सुनील

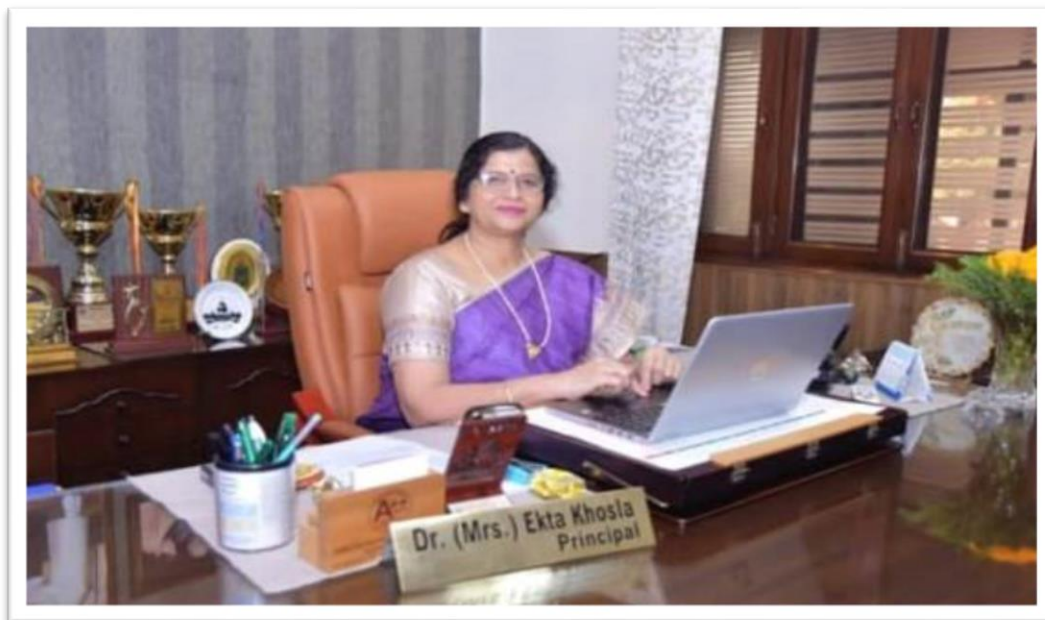
प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, डीन भाषा संकाय

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

संपादक मण्डल

डॉ. ज्योति गोगिया

डॉ. दीप्ति धीर



प्राचार्या संदेश

प्रिय पाठकों,

मुझे अत्यंत हर्ष है कि हिंदी विभाग द्वारा प्रकाशित शोध पत्रिका का नवीन अंक अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। यह प्रकाशन न केवल सृजनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि शोधपरक दृष्टिकोण, तार्किक चिंतन एवं बौद्धिक विकास का भी प्रमाण है।

आज के ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी युग में अनुसंधान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। शोध कार्य हमें किसी भी विषय के गहन अध्ययन, विश्लेषण एवं निष्कर्ष तक पहुँचने की क्षमता प्रदान करता है। मुझे प्रसन्नता है कि हमारे महाविद्यालय का स्नातकोत्तर हिंदी विभाग शोध एवं साहित्य के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है और विभिन्न विद्वानों के शोध कार्य एवं विचारों को अपनी पत्रिका के माध्यम से पाठकों के संकक्ष प्रस्तुत कर रहा है। मैं इस प्रकाशन के लिए हिंदी विभाग, संपादकीय मंडल, मार्गदर्शक प्राध्यापकों एवं सभी शोधार्थियों को हार्दिक बधाई देती हूँ। जिनके समर्पण एवं परिश्रम से ही यह उत्कृष्ट कार्य संभव हो पाया है।

मेरी शुभकामनाएँ हैं कि यह पत्रिका ज्ञान के प्रसार में सहायक सिद्ध हो तथा पाठकों को नए विचारों एवं अनुसंधान की नवदिशा की ओर प्रेरित करे।

प्राचार्या

डॉ.(श्रीमती)एकता खोसला



शुभकामना-संदेश

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर के स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'साहित्यावलोकन' की दीर्घ और सफल प्रकाशन-यात्रा के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

यह पत्रिका लगभग तीन दशकों से निरंतर साहित्यिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक चेतना का सशक्त माध्यम बनी हुई है। विशेष रूप से सन् 2013 से इसकी नियमितता और निरंतरता प्रशंसनीय है, जो संपादकीय प्रतिबद्धता, शैक्षणिक गंभीरता और साहित्य के प्रति समर्पण का प्रमाण है।

यह पत्रिका न केवल विद्यार्थियों और शोधार्थियों को अभिव्यक्ति का मंच प्रदान करती है, बल्कि हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। इसके माध्यम से नए विचारों, शोध-परिणामों और रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहन मिल रहा है, जो ज्ञान-विस्तार और सांस्कृतिक समृद्धि की दिशा में एक सराहनीय पहल है।

मैं कामना करता हूँ कि यह पत्रिका भविष्य में भी इसी प्रकार निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहे, नवीन आयाम स्थापित करे और हिंदी साहित्य-जगत को समृद्ध करती रहे।

संपूर्ण संपादकीय मंडल एवं स्नातकोत्तर हिंदी-विभाग को इस उत्कृष्ट कार्य के लिए पुनः हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ।

-प्रो.(डॉ.) सुनील शर्मा

विभागाध्यक्ष, हिंदी-विभाग एवं अधिष्ठाता, भाषा-संकाय

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (पंजाब), भारत।



विभागाध्यक्ष संदेश

सृजन ईश्वर की दिव्य शक्ति है। सृजन की क्षमता भी ईश्वर की विशेष कृपा से आती है। साहित्य सृजन के माध्यम से जहाँ अपने भीतर की भावनाओं एवं विचारों को अभिव्यक्ति मिलती है वही समाज को समझने व समझाने का मंच भी मिलता है। इतना ही नहीं, साहित्य समाज से ऊपर उठकर आत्म-साक्षात्कार का माध्यम भी बनता है। तभी तो साहित्य को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। साहित्य के विविध रस हमें बाहर से भीतर तक की यात्रा की ओर ले जाते हैं। जहाँ डूबकर इंसान आनंद के सागर में हिलोरें लेता है और उसी में डूबकर जीवन में यथार्थ को भी समझ पाता है और रहस्य को भी।

साहित्य के क्षेत्र में शोध का अपना महत्त्व है। शोध विकास का आधार है। शोध ज्ञान के सही रूप से तलाश का प्रयास है। यह नए रास्तों की नई मंज़िलों की तलाश भी है। शोध सृजनात्मकता का ही एक रूप है। 'सृजनात्मकता' अर्थात् कुछ नया पैदा करने की प्रतिभा यानि 'मौलिकता'। शोध और साहित्य रचना दोनों ही सृजनात्मकता का अंश है।

साहित्यावलोकन शोध और सृजनात्मकता भी की संगम स्थली है। जिसका प्रकाशन लगभग तीन दशकों से हो रहा है। समय समय पर विद्वानों ने अपनी रचनाओं, आलोचनाओं से इसके निर्माण संस्कार व परिष्कार में अपना योगदान दिया है, उनका बहुत बहुत आभार।

कॉलेज की प्राचार्या डॉ (श्रीमती) एकता खोसला जी का दिशा निर्देशन हमारी प्रगति का आधार स्तंभ है। उनका हार्दिक धन्यवाद। श्रीमती पवन कुमारी ने साहित्यावलोकन के वर्तमान अंक को सुंदर रूप में साकार करने में महती भूमिका निभाई है, इसके लिए वह साधुवाद की पात्र है। विकास की दिशा में विद्वानों के समालोचना व सुझावों का सदैव स्वागत है।

डॉ ज्योति गोगिया

संपादिका

अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर



संपादिका संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि हम आपके समक्ष “साहित्यावलोकन” का नवीन अंक प्रस्तुत कर रहे हैं। यह पत्रिका केवल शब्दों का संकलन नहीं, बल्कि भावनाओं, विचारों और सृजनात्मकता का जीवंत दर्पण है। प्रत्येक रचना अपने भीतर एक अलग संसार समेटे हुए है, जो पाठकों को सोचने, समझने और अनुभव करने के लिए प्रेरित करती है।

आज के डिजिटल युग में जहाँ भाषा और अभिव्यक्ति के स्वरूप निरंतर बदल रहे हैं, वहीं हिंदी साहित्य अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए नवीन आयामों को भी आत्मसात कर रहा है। इस अंक में हमने विविध विषयों को स्थान दिया है, ताकि पाठकों को व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त हो सके।

हमारा उद्देश्य केवल साहित्य का प्रकाशन नहीं, बल्कि नवोदित लेखकों को मंच प्रदान करना और उनकी प्रतिभा को प्रोत्साहित करना भी है। इस दिशा में साहित्य प्रेमियों का उत्साह सराहनीय है।

इस पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग देने वाले सभी लेखकों, संपादकीय मंडल, तथा मार्गदर्शक शिक्षकों के प्रति हम हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। आशा है कि यह अंक आपके मन को स्पर्श करेगा और आपको निरंतर पढ़ने एवं लिखने के लिए प्रेरित करेगा।

सादर,

डॉ. पवन कुमारी

साहित्यावलोकन

सृजन एवं शोधपत्रिका

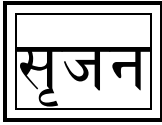
संस्करण - 2025-2026

संदर्भिका

शोध

- ❖ समकालीन हिन्दी साहित्य की संरचना एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
प्रो. डॉ. योगेश चंद्र सूद
- ❖ हिन्दी सिनेमा और विभाजन की समस्या
डॉ. कंचन गोयल
- ❖ युगल किशोर प्रसाद की आलोचना दृष्टि : एक अवलोकन
डॉ. संपना शर्मा
- ❖ भारतीय भाषाओं के समन्वय में हिन्दी की भूमिका
डॉ. ज्योति गोगिया
- ❖ शिक्षा और जीवन मूल्य
डॉ. रूपिका शर्मा
- ❖ भूमंडलीकरण का दौर और हिन्दी भाषा
डॉ. तेजिंदर कौर
- ❖ डिजिटल दौर में हिन्दी : अमभवनाएँ, संघर्ष और दिशा
श्रीमती पवन कुमारी
- ❖ 21वीं सदी का हिन्दी नाटक और रंगमंच : चुनौतियाँ और संभावनाएँ
डॉ. अनुशोभा

- ❖ सूरदास के काव्य की मूल संवेदना
डॉ. दीप्ति धीर
- ❖ मुंशी प्रेमचंद का जीवन दर्शन
श्रीमती अनुराधा ठाकुर
- ❖ गांधी और अंबेडकर : दलित चेतना के परिपेक्ष्य में
डॉ चमकोर सिंह



- ❖ आखिरी खत
डॉ विनोद कालरा
- ❖ लघुकथा
प्रो. डॉ योगेश चंद्र सूद
- ❖ सहोदर भाई
डॉ निर्मल कोशिक
- ❖ आलेख - नमन्ति फ़लिनः वृक्षाः
रूपसिंह चन्देल
- ❖ कहानी- शेर की जाति
मुकेश कुमार
- ❖ आत्मचिंतन क्यों आवश्यक है?
मंजुला शर्मा
- ❖ कहानी -माँ का त्याग
छात्रा- दामिनी
- ❖ कविता – यादें ,ढाई आखर प्रेम
डॉ विनोद कालरा
- ❖ कविता –आत्म-अवलोकन ,खुशिया , दृष्टिकोण
रमन कुमार

रक्षा

समकालीन हिन्दी साहित्य की संरचना एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रो.(डॉ.) योगेश चन्द्र सूद

सूद कॉटेज, प्रोफेसर कॉलोनी, मैहतपुर, जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश -174315

दूरभाष :7018655242

आज की कविता को समकालीन कविता कहा गया है।

समकालीन हिन्दी कविता का इतिहास संघर्षमय रहा है। साहित्य अथवा काव्य के हर काल को उतार-चढ़ाव का सामना करना ही पड़ता है। इस प्रकार समकालीन काव्य कोई अपवाद नहीं है। समकालीन कविता का आधार प्रयोगवाद तथा नई कविता है। यह कहना तर्कसंगत तथा सार्थक होगा कि कविता को अपने काल से जोड़ने के लिए उसे समकालीन कविता का नाम दिया गया जो सत्तर-अस्सी के दशक के बाद की कविताओं के लिए था। परन्तु यह नाम बहुत अधिक देर तक चला नहीं। कारण शायद यही रहा हो कि इस काव्य में सर्वमान्य तत्वों का आभाव था। किसी भी काव्य को किसी काल में बाँध देने से अभिप्राय उसे एक पहचान देना होता है ताकि कवियों की भीड़ में से कवि की एक अलग पहचान हो।

समकालीन कविता की संरचना की बात करते हुए कहा जा सकता है कि इस काल के कवियों को दो जमातों में विभाजित किया जा सकता है - उच्च स्तरीय कवि अर्थात् स्थापित कवि, धरातल अर्थात् सतह के कवि। दोनों ही कवियों के वर्ग अपने-अपने ढंग, शैली तथा साधनों के अनुसार एक ही भाव को व्यक्त करने का प्रयास कर रहे थे। स्थापित कवि की आवाज पर्वत की चोटी से आ रही थी जो वातावरण में गूँज रही थी, परन्तु धरातल के कवि की आवाज खाई में से आने के कारण मध्यम तथा धीमी थी। बड़े कवि छोटे कवियों को स्थापित होने का अवसर नहीं देना चाहते जिससे उनका सिंहासन खतरे में पड़ जाए। यह भिन्नता तो सदैव बनी रहती है। समकालीन कविता कोई अपवाद नहीं।

समकालीन कविता के इतिहास की बात करते हुए कहा जा सकता है कि भौतिकतावाद की चकाचौंध ने समकालीन कविता की एकाग्रता तथा चिंतनशीलता को प्रभावित किया। लोभ के तत्व ने कविता का खेल बिगाड़ दिया। भाव अथवा विचार दब कर रह गया। निःसंदेह कवि भी एक मानव है जिसका अपना एक जीवन है तथा उसकी आवश्यकताएं भी। रोजी-रोटी हेतु कवि अपनी कविता को समय के अनुसार ढालने का प्रयास करता है। जिससे कविता की गहराई तथा भाषा पर बुरा असर पड़ने की संभावना बनी रहती है। समकालीन काव्य कोई अपवाद नहीं। समकालीन कविता में गाँव तथा शहर की कविता में भिन्नता रही है। गाँव का कवि खेतों, फसलों, पक्षियों तथा प्रकृति की बात करता हुआ गाँव के पिछड़ेपन की ओर ध्यान आकर्षित करता है जबकि शहर की कविता का संदर्भ शहरों की दुर्दशा तथा अन्य विषमताओं के बारे में है। समकालीन कविता का सकारात्मक पहलू यह है कि यह समाज के पिछड़े वर्ग के उत्थान की बात करती है। यह उसकी संरचना की विशेषता है तथा इसके समृद्ध विकास का हिस्सा भी।

कविता भले ही पुरातन हो अथवा आधुनिक, प्रयोगवादी, छायावादी या फिर नई कविता हो, कविता की शैली, तकनीक तथा भाषा में अन्तर रहा है जबकि हर काव्य का मूल उद्देश्य तो राष्ट्र निर्माण ही रहा है। समकालीन कवि रोषपूर्ण स्वर में समाज में फैली अनियमितताओं के प्रति अपनी बात रखना है। सामान्य भाषा में कविता को भावनाओं का बहाव तथा फुर्सत के लम्हों में सींचे हुए विचारों की अभिव्यक्ति कहा गया है। विचार मन की खुराक हैं कोई संदेह नहीं परन्तु समकालीन काव्य में कवि की प्रतिक्रिया तथा मूड परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। वह अपने आसपास हो रहे मानवीय शोषण को देखकर अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता। उसे उसके खिलाफ आवाज बुलंद करनी पड़ती है। वह यथार्थ को व्यक्त करता है। किसी को प्रसन्न करना उसका मकसद नहीं है। साहित्य अथवा काव्य अपने युग अथवा समाज का दर्पण कहलाता है। वैसे ही समकालीन काव्य अपने काल की समस्याओं का मुँह बोलता प्रमाण है। समकालीन कवियों की रचनाओं में विद्रोह की आग भड़कती दिखाई देती है क्योंकि जिस सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना तथा परिवर्तन की कल्पना समकालीन कवियों ने की थी, वैसा उनकी आशा के अनुसार नहीं हुआ। इसलिए समाज में फैली असमानताओं तथा त्रुटियों के प्रति उन्हें कड़ा रुख अपनाने के लिए विवश होना पड़ा। काल सत्तर के दशक से पहले का हो अथवा बाद का समाज तथा राष्ट्र की दशा तथा दिशा बदलने हेतु कवियों को कलम रूपी हथियार का प्रयोग करना पड़ा है। निःसंदेह समकालीन कविता यथार्थ पर बल देती है परन्तु अपनी बात को स्पष्ट रूप से कहने के लिए कवि को प्रतीक तथा बिम्ब की सहायता लेने की आवश्यकता अनुभव हुई है जबकि जीवन की वास्तविकताओं से सम्बन्ध होने के

कारण समकालीन कविता में रहस्य तथा कल्पना के तत्व पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया प्रतीत होता है।

एक दीपक दूसरे दीपक को तभी रोशनी प्रदान कर सकता है जब उसकी अपनी बाती जल रही हो, एक बुझा हुआ दीपक किसी अन्य दीपक को प्रकाश नहीं दे सकता। समकालीन समय की यह विशेषता रही है कि उस समय में पाठ्य सामग्री की भरमार थी। समय-समय पर कई पुस्तकें, समाचार पत्र, मैगजीन तथा रसाले प्रकाशित हुए जिन्होंने उस समय के रचनाकार कवियों के विषयों को प्रभावित किया तथा क्रांतिकारी काव्य का सृजन हुआ। एक मोमबत्ती एक दीपक को रोशनी देती है परन्तु एक कवि मानवीय आत्मा को अँधेरे से प्रकाश की ओर ले जाता है। समकालीन कविता को अपने समय का मागदर्शन काव्य कहा जाता है। हर युग तथा काल की अपनी सीमाएं तथा समस्याएं होती हैं जिन पर नियंत्रण करके काव्य प्रायः बदला है। समकालीन कविता को भी बाहरी तथा भीतरी दबाव का सामना करना पड़ा। समकालीन कविता का इतिहास जन साधारण से जुड़ा रहा है। इसे आम आदमी का काव्य भी कहा जा सकता है।

समकालीन काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं संरचना की चर्चा करते हुए कहा जा सकता है कि 1857 की क्रांति, भारत का स्वतंत्रता संग्राम का संघर्ष, 1947 में भारत की आजादी, देश के विभाजन की कहानी, संविधान की रचना तथा अन्य राजनीतिक तथा सामाजिक घटनाओं से पैदा हुए महत्वपूर्ण प्रश्न समकालीन कविता के लिए उपयोगी विषय-वस्तु रहे। अतीत पर ही वर्तमान आधारित होता है। कल की घटनाएं तथा इतिहास आज का निर्माण करते हैं।

समकालीन काव्य आम आदमी की पीड़ा, नारी की दुर्दशा, किसान का शोषण, पर्यावरण के बिगड़ते स्वरूप का चित्रण प्रस्तुत करती है। समकालीन कवियों ने धर्म में पनप रहे आडंबर पर भी चिंता व्यक्त की है। समकालीन कवि धर्म को मागदर्शक मानता है। यदि धर्म ही व्यक्ति को गुमराह करेगा तो फिर मानवता को रास्ता कौन दिखाएगा? समकालीन कविता की संरचना समाज में प्रचलित बुराईयों के विरोध में हुई तथा जनमानस की समस्याओं की चर्चा करके इसकी सुनहरी पृष्ठभूमि बन गई। 1980 के दशक में जब समाज का आधुनिकरण हो रहा था तो सहज ही समाज प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा था। जहाँ विकास होगा, वहाँ विनाश भी तय है। समकालीन कविता की विषय वस्तु यह विनाश ही है। मानव की व्यथा कवि के हृदय को पीड़ा देती है और वह रोष स्वरूप अपनी कलम उठा लेता है। समकालीन कवियों को मानव की वेदना का अहसास कुछ अधिक हुआ जिसका यह परिणाम निकला कि उन्होंने प्रचलित बुराईयों पर अपनी कलम से प्रहार किया।

काव्य में शब्दों का विशेष महत्व रहता है। सामान्य काव्य के लिए सामान्य भाषा का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु आलोचना से पूर्ण काव्य के लिए कवि को अलग भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। समकालीन कवियों ने अपने उग्र तथा तेज तर्रार विचारों की अभिव्यक्ति हेतु तल्लू शब्दों का प्रयोग किया जिससे व्यंग्य भी शामिल था जो उस प्रकार के काव्य के लिए उचित भाषा थी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समकालीनता एक जीवन दृष्टि है जहाँ कविता तर्क एवं संवेदना की भूमि पर अपने समय को अंकित करती है। यह एक तरह का सर्जनात्मक धरातल पर साहित्य का मुठभेड़ है जहाँ वस्तुओं के नाम और अर्थ बदल जाते हैं। जीवन को काव्य के माध्यम से एक नया आयाम मिलता है। यह सच है कि अपने समय से आँख मिलाए बिना न रचना संभव है तथा न ही आलोचना। कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है। बाजारवादी युग में मनुष्य की स्थिति सोचपूर्ण एवं तर्कशील है और यह हमें समकालीन कविता के इर्द-गिर्द सर्वत्र दिखाई देता है। आधुनिक युग पर तंज कसते हुए विनोद कुमार शुक्ल लिखते हैं -

बाजार में जो दिख रहा है
तंदूर में बनती हुई रोटी
सबके हिस्से की बनती हुई रोटी नहीं है
जो सब की घड़ी में बज रहा है
वह सब के हिस्सों का समय नहीं है।

समकालीन कविता का इतिहास चुनौतीपूर्ण रहा है। यहाँ कवि आराम से बैठकर प्रकृति के सौंदर्य की प्रशंसा नहीं करता न ही वह नदी के बहते हुए नीर की बात करता है, उसकी कविता में चाँद सितारों की बात भी नहीं होती। यहाँ कवि का सामना मानवता की जटिल तथा मुश्किल समस्याओं से है। कवि के स्वर में रोष तथा कलम में पैनापन है। काव्य की यह विशेषता ही समकालीन काव्य को अपनी एक अलग पहचान प्रदान करती है।

समकालीन पाठ्य सामग्री - एक दृष्टि

दैनिक पत्र : आज (बनारस), सैनिक (आगरा), हिन्दी मिलाप, विश्व बन्धु, हिन्दुस्तान (दिल्ली), नवभारत टाइम्स (दिल्ली), आर्यवर्त (पटना), दैनिक भास्कर (म.प्र.)

साहित्यिक पत्र : कर्मवीर, सारथी (जबलपुर), वीणा (इन्दौर), विशाल-भारत (कलकत्ता), प्रतीक (दिल्ली), नया समाज, माधुरी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान (दिल्ली), धर्मयुग (मुंबई), दिनमान (दिल्ली)

मासिक पत्रिकाएं : नवनीत, कादम्बिनी, सारिका, कहानी, संचेतना, माध्यम, निहारिका, आजकल।

यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि धर्मयुग तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान के माध्यम से 1981 की समकालीन कविता को एक नया आयाम मिला। इन दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले कवियों में प्रमुख कवि रहे मृदुला अरुण शैबल, डॉ. रणजीत, शैलेश, भवानी प्रसाद मिश्र, डॉ. रामविलास शर्मा, फहमीदारियाज, शकुन्त माथुर, धर्मवीर भारती, काका हाथरसी, बेधड़क बनारसी, भगवत रावत, अब्दुल बिस्मिलाह, सुनीता जैन, अमिय साहनी, राजकुमार पाण्डेय, धनंजय सिंह, स्वप्निल श्री वास्तव, अरुनेश वीरन, पद्माशा, रामनिवास जाजू इत्यादि। इसके अतिरिक्त समकालीन कविता के क्षेत्र कुछ अन्य प्रमुख कवियों में भागीरथ भार्गव, जसबीर चावला, जयसिंह नीरज, काली मोहांत, अजित श्रीवास्तव, मानबहादुर सिंह, कुमार अंबुज, विनोद शुक्ल, विनोद दास, मदन कश्यप, रघुवीर सहाय, देवी प्रसाद मिश्र, लीलाधर जगूड़ी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी इत्यादि शामिल हैं।

लेख की आधार मूल सामग्री पुस्तकें (अर्थात् सम्पर्क सूत्र कृतियां)

1. डॉ. रत्न कुमार पाण्डेय, समकालीन कविता, संवेदना और अभिव्यक्ति (वाराणसी : संजय बुक सेंटर, 1996)
2. डॉ. दिलीप पाण्डेय, उपकार (आगरा : उपकार प्रकाशन) कोड नं. 1420
3. डॉ. राजकुमार, कविता: स्वभाव- समीक्षा (जम्मू :स्वर्ण प्रकाशन, 2010)

हिंदी सिनेमा और विभाजन की त्रासदी

डॉ. कंचन गोयल

(सहायक प्राध्यापक)

अध्यक्षा, पोस्ट ग्रेजुएट हिंदी विभाग

एस. डी. कॉलेज फार वीमेन, मोगा।

हिंदी सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जिसमें समाज में घट रही घटनाओं को मूर्तता के साथ प्रस्तुत किया जाता रहा है। सिनेमा सामाजिक दर्पण के रूप में कार्य करता है। सिनेमा सामाजिक संरचना एवं सामाजिक मूल्यों को प्रसारित करने वाला प्रतिबिंब मात्र है। भारतीय सिनेमा में स्त्री की विविध छवियाँ चित्रित की गई हैं। स्त्री की यह छवि समय के साथ बदली भी है। समय के साथ-साथ स्त्री स्वातंत्र्य का अर्थ व संदर्भ निरंतर बदलता रहा है। आधुनिक युग में स्त्री से संबंधित विमर्श के विभिन्न बिंदुओं को भली भांति समझने के लिए स्त्री को समाज साक्षेप उपलब्धियों का अध्ययन करने के लिए समाज में स्त्री की स्थिति का अवलोकन सर्वोपरि है। एक राष्ट्र की उन्नति उसकी नारी पर निर्भर करती है।¹ प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टॉड ने लिखा है, "यह एक सार्वभौम सत्य है कि किसी देश के विकास के ज्ञान का सर्वाधिक उज्ज्वल प्रमाण वहाँ की नारियों की स्थिति है क्योंकि वे न केवल संपूर्ण जनता का अर्द्धांश हैं, अपितु शेष (अर्द्धांश पुरुष वर्ग) को भी बहुत सीमा तक प्रभावित करती रहती हैं। समाज में उसकी भूमिका विविध है जिसमें माँ, बहन व पत्नी उसके प्रमुख रूप हैं। वह परिवारजनों की लगन, प्रेम, श्रद्धा व धैर्यपूर्वक सेवा करती है।"² सिनेमा में स्त्री की छवि उसी प्रकार तेजी से बदलती जा रही है जैसी की समाज में उसकी छवि बदलती जा रही है।

स्वतंत्रता के पूर्व हिंदी सिनेमा जनता को जागृत करने, राष्ट्रीय भावना को जगाने के लिए विशेष प्रयासरत रहा है। यही नहीं स्वतंत्रता के उपरांत भारत में हुए विभाजन और उससे उपजी पीड़ा को भी केंद्र में रखा गया। विभाजन भारत के संदर्भ में इतिहास का काला पन्ना माना जाता है। विश्व स्तर पर भी 'विभाजन' सबसे बड़ी घटना साबित हुई है। हिंदी सिनेमा भी इससे अछूता न रह

सका। किसी-न-किसी रूप में इस घटना को प्रदर्शित करने लगा। भारत के विभाजन के पीछे राजनैतिक शक्तियों थी,

इस विभाजन की कल्पना न तो भारत में रह रहे मुसलमानों ने की और न ही हिंदुओं ने की। वास्तव में हिंदू और मुसलमान ने विभाजन असहनीय पीड़ा को सहन किया। । ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो, शासन करो' की नीति विभाजन की पृष्ठभूमि रही। विभाजन का परिणाम दो धर्मों के बीच एक अलग राष्ट्र के रूप में हुआ। इस विभाजन से दोनों धर्मों के लाखों लोग बेघर हो गए। लाखों की संख्या में लोग एक-दूसरे धर्मों के लोगों को मौत के घाट उतारने लगे। हिंसा का यह दृश्य विभाजन के समय बहुत ही विशद रूप में दिखाई पड़ता है। विभाजन को आधार बनाकर अनेक फिल्मों का निर्माण हुआ। जिनमें तमस, छलिया, धर्मपुत्र, गर्म हवा, गांधी, सरदार, अर्थ, ट्रेन टू पाकिस्तान, शहीद-ए-मोहब्बत बूटा सिंह, हे राम, गदर : एक प्रेम कथा, पिंजर, खामोश पानी, भाग मिलखा भाग आदि फिल्में उल्लेखनीय हैं। भारत-विभाजन की त्रासदी देश को मिला वह नासूर है जो आज भी हृदय में टीस देता है। धर्म के नाम पर दंगे मानवीयता पर गाली थे। विभाजन ने देश को हर स्तर पर गहरी क्षति पहुँचाई है। सिनेमा अनेक घटनाओं को परदे पर जीवंत करता है।

'धर्मपुत्र' फिल्म यश चोपड़ा द्वारा निर्देशित सन् 1961 में की गई थी। यह फिल्म आ. चतुरसेन के उपन्यास पर आधारित फिल्म है। यह फिल्म भारत विभाजन के विविध पहलुओं को सामने लाती है। इसके निर्माता बी.आर.चोपड़ा ने खुद लाहौर के विभाजन की विभीषिका को करीब से देखा था। फिल्म में मुख्य भूमिका शशि कपूर की है। इस फिल्म की कहानी 1925 से शुरू होती है जहाँ एक हिंदू और एक मुस्लिम परिवार बेहद आत्मीयता से एक ही घर के अलग-अलग हिस्सों में रहते हैं। मुस्लिम परिवार का मुखिया नवाब बदरुद्दीन है जिसकी बेटी हुस्र बानो जावेद नाम के एक लड़के से प्यार करती है पर शादी के दिन जावेद वहाँ से भाग जाता है। हुस्र बानो गर्भवती होती है, तो हिंदू परिवार के मुखिया अमृत राय और उसकी बीवी सावित्री हुस्र बानो की देखभाल करते हैं और उसके नवजात बेटे को दिलीप नाम देकर पालते-पोसते हैं। हुस्र बानो की शादी एक दूसरे लड़के से कर दी जाती है और वह अपने पति के साथ चली जाती है। कुछ वर्षों के बाद जब हुस्र बानो अपने पति के साथ उस पुराने घर में आती है, तो देखती है कि उसका बेटा दिलीप एक फॉसिस्ट बन गया है और मुसलमानों से बहुत नफरत करता है। वह मुसलमानों को भारत से बाहर निकालने की मुहिम से भी जुड़ा हुआ है। हुस्र बानो को बहुत अचरज होता है। यह

फिल्म हिंदू-मुस्लिम एकता को एक नया विमर्श देती है और इंसान को इंसान समझने की आवश्यकता को रेखांकित करती है। “जन्म से कोई हिंदू-मुसलमान नहीं होता, एक मुसलमान बालक भी यदि हिंदू घर में पले तो वह हिंदुओं से भी अधिक कट्टर हिंदू बन सकता है। ये सब बातें दर्शाती हैं कि हिंदू-मुसलमान ये सब ऊपरी 'लेबल' हैं, जो लोगों पर चिपका दिए गए हैं; वास्तविक चीज मनुष्यता है और वह इन सब धर्मों से बढकर है।”³

‘गर्म हवा’ फिल्म सन् 1973 में दो देशों की आत्मीयता को झकझोरने वाली कथा पर आधारित है। मुख्य भूमिका में बलराज साहनी है। इस फिल्म में विभाजन के बाद बनते-बिगड़ते मानवीय संबंधों और रिश्तों के कड़वाहट की कहानी बयां करती है। यह फिल्म उन मुस्लिमों के हालात पर केंद्रित है, जिन्होंने विभाजन के बाद भी पाकिस्तान जाना स्वीकार नहीं किया। वे भारत को ही अपना मूल वतन मानते थे, लेकिन अपने ही देश में उन्हें जासूस समझा जाने लगा था। पूरी फिल्म आगरा और फतेहपुर सीकरी के इर्द-गिर्द घूमती है। यह फिल्म अपने विषय के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण रही। इसे इस प्रकार की पहली फिल्म माना जा सकता है। जिसमें विभाजन तो नहीं लेकिन विभाजन से पहले और उसके बाद की मनोदशा को पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। विभाजन के समय हाहाकार को फिल्म के माध्यम से व्यक्त किया गया। फिल्म विस्थापित और विभाजित लोगों के दर्द की व्यक्त करती नजर आती है।

भारत विभाजन पर केंद्रित हिंदी फिल्मों की श्रृंखला में 'गांधी' फिल्म महत्वपूर्ण है। सन् 1982 में प्रदर्शित गांधी फिल्म ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित की है। इस ने विभिन्न पुरस्कार भी प्राप्त किए। गांधी फिल्म के डायरेक्टर रिचर्ड एटनबरो थे और गांधी की भूमिका में बेन किंग्सले ने दमदार अभिनय किया था। 'गांधी' फिल्म मोहनदास करमचंद गांधी के जीवन पर केंद्रित है जिसमें अहिंसा आंदोलन, असहयोग आंदोलन और अंग्रेजों के खिलाफ देश को एकजुट करने के लिए सत्याग्रह आंदोलन को दिखाया गया है। फिल्म के अंत से पहले भारत-विभाजन की त्रासदी को दिखाया गया है।

दीपा मेहता की फिल्म '1947 अर्थ' में भी विभाजन के समय की हिंसक घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है। फिल्म का संगीत ए. आर. रहमान का है। यह राजनीति, प्रेम और विश्वासघात की कहानी है। फिल्म के मुख्य कलाकार आमिर खान, अक्षय खन्ना, नंदिता दास और बेबी माएला हैं।

कहानी मार्च 1947 से लेकर अगस्त 1947 की घटनाओं के बीच लाहौर शहर के हालात को बयाँ करती है। बंटवारे से पहले लाहौर की आबो-हवा, माहौल बहुत खुशनुमा था लेकिन आजादी के साथ मिले इस बँटवारे ने यहाँ की रंगत बदल जाती है। यह केवल लाहौर की ही नहीं सारे हिंदुस्तान की हालत थी।

विभिन्न धर्मों के लोग आजादी से पहले एक-दूसरे के साथ भाईचारे और सद्भाव के साथ रहते थे, वे एकाएक विभाजन के बाद एक-दूसरे को शंका की दृष्टि से देखने लगे। मौकापरस्त लोगों ने भी आपसी द्वेष के कारण लोगों के घरों की संपत्ति लूट कर उन्हें मौत के घाट उतार दिया। दोनों ही धर्मों के बीच नफरत के बीज पैदा हो गए थे, जिसके कारण विभाजन जैसी मानवता का दोहन करने वाली घटना घटी। 'अर्थ' में भी ऐसे ही हृदय विदारक दृश्यों का चित्रण दिखाई पड़ता है। पूरी-पूरी रेलगाड़ी शवों से भरकर आती है, जिसे देखकर नायक (मुस्लिम पात्र) के मन में भी हिंदू संप्रदाय के लोगों को मारने की भावना भर जाती है। इस प्रकार 'अर्थ' में बदले की भावना ही विभाजन की त्रासदी को और अधिक गहरा कर देती है। इस फिल्म में हिंदू-मुस्लिम समाज और उनकी चिंता को केंद्र में रखा गया है। "ईश्वर अल्ला तेरे जहाँ में नफरत क्यों है, जंग है क्यों ? तेरा दिल तो इतना बड़ा है, इंसा का दिल तंग है क्यों?"⁴ बँटवारे के कारण अपने साथ हो रहे व्यवहार के प्रति सोचने को मजबूर किया है। विभाजन पर आधारित फिल्में मुस्लिम अस्मिता के प्रश्न को भी उठाती है। जो भारत छोड़कर पाकिस्तान नहीं जाना चाहता वह स्वयं को भारत से अलग होकर नहीं देखता परंतु अपने अस्तित्व की खोज भारत में रहकर करता है।

'पिंजर' (2003) फिल्म विभाजन के समय सभी धर्मों के लोगों ने एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाया। इसी तर्ज पर नायक राशिद पूरी को उठा लाता है। वह स्वयं ऐसा नहीं करना चाहता किंतु उससे यह कार्य उसके समाज द्वारा प्रतिशोध वश कराया जाता है क्योंकि कई साल पहले इन्हें हिंदू परिवार में से किसी एक ने मुस्लिम के घर की स्त्री को उठा लिया था। राशिद परिस्थिति-वश ऐसा करता है। वह पूरे के साथ हिंसक रूप में सामने नहीं आता। फिल्म पिंजर राशिद के मानवीय रूप का चित्रण करती है। साथ ही वह पूरे के साथ शादी कर उसे सम्मानपूर्वक जीवन देता है। फिल्म विभाजन की विद्रूपता को दर्शाती है और साथ ही मुस्लिम समाज के मानवीय रूप की स्थापना भी करती है। विभाजन की जिस विडंबना के कारण पूरे अपमानित हुई थी, वह राशिद की मानवता के कारण ही उसे अपना लेती है। जिसकी विभाजन का दर्द आम लोगों ने तरह-तरह से

भोगा था, दंगों से लोगों ने अपनी आत्मा और इंसानियत का भी बँटवारा कर लिया 'पिंजर' में रशीद गैर धर्म का होकर भी प्रेम वशीभूत इंसानियत के पूरे और रशीद यह सिद्ध करते हैं कि सरहदों, मुल्कों और धर्मों से ब होता है, जिसके सामने कोई भी कट्टरता छोटी पड़ जाती है। दो देशों कम करने में यह फिल्म एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। मुस्लिम समाज का मानवी चेहरा 'हे राम'(2000) में भी 'अमजद अली' की भूमिका निभा रहे शाहरुख खान के रूप में भी उभरता है। इस फिल्म में ब्राह्मण साकेत राम (कमल हासन) के माध्यम से हिंदुत्ववादी ताकतों का चित्र दिखाई पड़ता है। साकेत राम को यह ताकतें गलत दिशा की ओर मोड़ती है। यहाँ भी विभाजन का जिम्मेदार मुस्लिम समाज का उदार चेहरा दिखाई पड़ता है, जो साकेत राम को हिंसक होने से रोकता है। इस फिल्म में विभाजन के सहमी मानवीयता के खोने और फिर से पाने की कहानी है। अनेक उतार-चढ़ाव के बाद पुनः साकेत में गांधी के विचारों के प्रति आस्था और सम्मान की भावना को दर्शाया गया है। जवरीमल्ल पारख कहते हैं कि "यह महज संयोग नहीं है कि 1980 के बाद हिंदी फिल्मों में सांप्रदायिकता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से पेश किया जाने लगा था। ऐसे दोनों तरह की फिल्मों में हो रहा था। शुद्ध व्यावसायिक और लोकप्रिय फिल्में बनाने वाले फिल्मकार भी ऐसी फिल्में बना या शेजार व फिल्मकार भी जो सिनेमा को सिर्फ मनोरंजन का माध्यम नहीं मानते, बल्कि इसे वे रचनात्मक और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी मानते हैं।"⁵

गदर : एक प्रेम कथा (2001) में एक सिक्ख ड्राइवर तारा सिंह और मुस्लिम लड़की के प्रेम कथा का वर्णन है। इसके विपरीत मुस्लिम समाज का कट्टरवादी चेहरा भी प्रस्तुत करती है, जो अपने धर्म को सर्वोपरि रखता है। लाशों से भरी रेल, बेघर लोग, भूखे-प्यासे, आशियाना ढूँढते लोग विभाजन की भयावह छाया को चित्रित करते हैं, वहीं तारा सकीना का प्रेम धर्मों से परे दिखाई पड़ता है। नायक और नायिका विभाजन की आँधी से बचकर धर्मों के संकीर्ण दायरे से निकलकर अपने प्रेम की नई परिभाषा गढ़ते हैं। विभाजन के समय फैली हिंसा की आग को यह फिल्म एक शीतलता प्रदान करती है। इसके माध्यम से यह पता चलता है कि हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं है। तारा सिंह अपनी जान की परवाह न करते हुए सकीना की ज़िंदगी बचाते हैं। सकीना के पिता अपनी बेटी को धोखे से पाकिस्तान बुलाते हैं। तारा सिंह अपने बेटे बूटा सिंह को साथ लेकर अपनी पत्नी को लेने पाकिस्तान पहुँचते हैं। वहाँ अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। अंत में तारा सिंह सकीना को भारत लाने में सफल हो जाते हैं।

‘सरदार’ फिल्म वल्लभभाई पटेल के व्यक्तित्व पर केंद्रित है। ‘सरदार’ फिल्म का निर्देशन सन् 1993 में केतन मेहता ने किया है। कहानी विजय तेंदुलकर, संगीत वनराज भाटिया और मुख्य कलाकार परेश रावल (सरदार पटेल), अन्नु कपूर (महात्मा गांधी), बेंजामिन गिलानी (पं. नेहरू), टॉम आल्टर (लार्ड माउंटबेटन) एवं श्री वल्लभ व्यास (मो. जिन्ना) हैं। यह फिल्म पाकिस्तान बनाने से पहले की गतिविधियों पर आलोचनात्मक नजर डालती है, मुस्लिम लीग की बँटवारे में मुख्य भूमिका को भी सामने लाती है।

इस फिल्म के माध्यम से दर्शन सरदार पटेल का दमदार और कुशल राजनीतिज्ञ व्यक्तित्व, देश हित के लिए कठोर निर्णय लेने की क्षमता, स्पष्ट वक्ता आदि रूपों को ज्यादा नजदीक से समझ सकते हैं। “दिल्ली अगर हाथ से निकल गई तो पूरा देश बिखर जाएगा”, “सोचना यह नहीं कि क्या गँवाया है बल्कि यह सोचना है कि क्या बचाया है।” ‘सरदार’ फिल्म के माध्यम से भारत विभाजन के राजनीतिक कारणों का पता चलता है क्योंकि इन्हीं कारणों से देश के विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार हुई थी। फिल्म के अंत में सरदार पटेल अपनी कूटनीति से सभी रियासतों को मिलाकर अखंड भारत का स्वरूप सामने लाते हैं। यह इ बात की पुष्टि है कि भारत एक विभाजन के बाद और कोई भी विभाजन सहन नहीं कर सकता।

मशहूर लेखक खुशवंत सिंह की लिखी कहानी पर आधारित फिल्म ‘ट्रेन टू पाकिस्तान’ (1998) का निर्देशन पामेला रुक्स ने किया है। टेलीविजन पर 15 अगस्त 1998 ‘स्टारप्लस’ चैनल पर ‘ट्रेन टू पाकिस्तान’ का प्रीमियर हुआ था। फिल्म में ऐसे गाँव की कहानी है जहाँ हिंदू-मुसलमान बरसों से प्रेमपूर्वक रह रहे हैं। इस गाँव के पास से एक रेलवे लाइन गुजरती है, जो भारत से मुस्लिमों को पाकिस्तान और पाकिस्तान से हिंदुओं-सिखों को भारत लेकर आती है। सीमा पर बसे इस गाँव ‘मनो माजरा’ में मुस्लिम लड़की नूरन (स्मृति मिश्रा) और डकैत जग्गा (निर्मल पांडेय) आपस में प्रेम करते हैं। जब नूरन, जग्गा से कहती है कि तुम तो सिख हो अपनी जान बचाकर चले जाओ तो जग्गा कहता है ‘मैं न सिख हूँ, न मुसलमान, न हिंदू। मैं तो डाकू हूँ, मस्त मलंग’ मतलब साफ है कि मस्त मलंग किसी धर्म के फेर में नहीं पड़ते। फिल्म में दिखाया गया है कि जब पूरा देश दंगों की चपेट में था तब एक ट्रेन का असर ‘मनो माजरा’ पर भी गहरा पड़ता है और शांत गाँव की

हवा सांप्रदायिक, मारकाट, साजिश और अविश्वास में बदल जाती है। इन सब घटनाओं के बीच गाँव वालों से जब यह कहा जाता है कि हिंदू-मुस्लिम अलग-अलग बस से जाएँगे तो दोनों धर्मों के लोग आपस में गले लगकर रोते हैं। अपना घर छूटने का दुःख, पीड़ा और टीस दोनों पक्ष सहते हैं। फिल्म से विभाजन का एक और पहलू, सामने आता है, जिसमें राजनीति कारण नजर आती है और प्रेम समाधान बनकर सामने आता है। विभाजन की त्रासदी को हिंदी सिनेमा ने पूरी संवेदना के साथ दिखाया है। सिनेमा अतीत और वर्तमान को जोड़ने का प्रयत्न भी करता है। और साथ ही सिनेमा मुखर होकर इतिहास की आवाज बनता है।

भीष्म साहनी के उपन्यास पर आधारित विभाजन की पृष्ठभूमि पर बना 'तमस' फिल्म का निर्देशन गोविंद निहलानी ने किया है। 'तमस' में तत्कालीन राजीनितिक दाव-पेंच, सामाजिक परिस्थितियों और विभाजन की त्रासदी को झेलते जूझते व्यक्ति और समाज का लेखा-जोखा है। ओमपुरी, दीपा साही कलाकारों ने फिल्म की संवेदना के साथ पूरा न्याय किया है। विभाजन पर बनी फिल्मों में 'तमस' अग्रणी भूमिका निभाती है।

विभाजन से देश का बंटवारा हुआ और साथ ही लोगों का आपसी मेल-जोल, सौहार्द, मित्रता का भाव खत्म होते चले गए। विभाजन पर आधारित सिनेमा उस दौर की राजनैतिक स्थिति को समझने में भी मददगार साबित होता है। विभाजन पर आधारित फिल्में मुस्लिम समाज की मानसिक दशा का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं। यह फिल्में मुस्लिम समुदाय तथा उनकी पहचान, अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को राजनैतिक और सामाजिक धरातल पर लाकर हल करने का प्रयास करती है। सिनेमा विभाजन की त्रासदी को झेलने वाले चरित्रों का भी निर्माण करती है। विभाजन के समय, एक-दूसरे के साथ देने वाले लोगों का चित्रण, समाज में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाए रखने की कोशिश है।

संदर्भ सूची :

1. रेणुका नैयर-नारी , स्वातंत्र्य के बदलते रूप, पृ. 20
2. चन्द्र मोहन अग्रवाल , नारी व समाज, पृ. 120
3. विवेक दुबे, हिंदी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन दिल्ली, पृ. 70
4. पारख जवरीमल्ल, सांप्रदायिक आतंकवाद और हिंदी सिनेमा , वाणी प्रकाशन, पृ. 74
5. दीपा मेहता, 1947 अर्थ, 1997।

‘युगल किशोर प्रसाद की आलोचना-दृष्टि’ : एक अवलोकन

डॉ. सपना शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिन्दी-विभाग,

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय

अमृतसर।

मोबाइल न: 9872580935

ई-मेल. dr.sapnasharma@yahoo.com

मानव जीवन से साहित्य का गहरा सम्बन्ध होता है। साहित्य में वह शक्ति रहती है जो समाज के लिए शाश्वत मूल्यों की रचना करती है। इसलिए आलोचना का महत्व स्वयं सिद्ध है। आलोचना का कार्य साहित्याकाश में रवि के समान व्यापक प्रकाश द्वारा भ्रम-कुहेलिका को हटाकर जीवनदायिनी ज्योति का संचार करना है। इसी दशा में ही वह साहित्य में सर्जनात्मक शक्तियों की विधायिनी बन सकती है।¹

समकालीन हिन्दी साहित्य अपने वैविध्यपूर्ण रूप में साहित्य को समृद्धि एवं व्यापकता से विभूषित कर रहा है। हिन्दी साहित्य की इस लम्बी यात्रा में असंख्य साहित्यकारों एवं आलोचकों का अद्भुत योगदान रहा है। इन्हीं महत्वपूर्ण साहित्यकारों एवं आलोचकों में श्री युगल किशोर प्रसाद भी प्रख्यात रचनाकार के रूप में उपस्थित है। उन्होंने कविता, उपन्यास, आलोचना, सम्पादन के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत को विकसित, विस्तृत, प्रचारित, प्रसारित एवं समृद्ध किया है।

मैथ्यू आर्नल्ड समीक्षा कार्य को सर्जनात्मक शक्ति का कार्य मानते हैं क्योंकि युग को जानने के लिए समीक्षा शक्ति आवश्यक है।² हाल ही में डॉ. संजय चैहान द्वारा सम्पादित पुस्तक ‘युगल प्रसाद किशोर की आलोचना दृष्टि’ विद्या बुक्स नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। डॉ. संजय चैहान हिन्दी साहित्य जगत के कर्मठ साहित्यकारों में से एक है। संजय जी का यह चौथा महत्वपूर्ण सम्पादन कार्य

है। श्री युगल किशोर प्रसाद ने अनेकानेक हिन्दी पुस्तकों की रचना की।

जो हिन्दी साहित्य की धरोहर है। उन्होंने सम्पादन के साथ-साथ हिन्दी आलोचना के सिद्धान्तों और महत्वपूर्ण आलोचकों पर केन्द्रित पुस्तकों पर भी लेखनी चलायी। उनके इन्हीं विशिष्ट लेखों को डॉ. संजय चौहान ने प्रस्तुत पुस्तक में संग्रहित कर सम्पादन का विलक्षण कार्य किया है।

श्री युगल किशोर प्रसाद की खासियत यह है कि वह पूर्वग्रहों एवं गुटबंदी से मुक्त हो अपने गहन चिन्तन-मनन एवं आलोचकीय दृष्टि का पूर्ण रूप से प्रयोग करते हैं। इनके आलेख 'साहित्य में सांस्कृतिक दृष्टि' में जहाँ साहित्य में सांस्कृतिक दृष्टि की अनिवार्यता पर बल दिया गया है वहीं साहित्य सृजन में संस्कृति की अहम् भूमिका को भी उजागर किया है। अपने एक अन्य लेख में साहित्य सृजन में आस्था की महती भूमिका पर उन्होंने गहन-चिन्तन मनन किया है। सर्जक बनाने वाले तीन तत्वों पर विचार करते हुए लिखते हैं कि पहला तत्व पूर्वभव संस्कार, दूसरा प्रतिभा तथा तीसरा अभ्यास, वातावरण परिवेश आदि है। भारतीय सृजन दृष्टि को उन्होंने समग्रता की दृष्टि माना है जिसमें प्रेय, श्रेय, भौतिकता, आध्यात्मिकता तथा आनन्द आदि सब कुछ विराजमान है।

युगल किशोर प्रसाद जी ने साहित्य सृजन के मूल में राष्ट्रीय सरोकार को महत्वपूर्ण माना है। उनका साहित्यिक विवेक निष्पक्ष दृष्टि से परिपूर्ण है। जहाँ कहीं उन्हें साहित्य में संस्कृति के लिए खतरा उभरता दिखायी पड़ता है, वही वह उसकी तीखी आलोचना करते हैं। उनका मानना है कि "छायावादी, मार्क्सवादी प्रयोगवादी धारा ने साहित्य को कुंठित किया है और रही सही बात उत्तर आधुनिक सोच ने पूरी कर दी।³ युगल प्रसाद किशोर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि साहित्य को समय के अनुकूल बनाने की जिम्मेदारी आज के साहित्यकारों पर ही है।

डॉ. शीतांशु के अनुसार आलोचना एक ऐसी विधा है जिसके लिए अध्ययन के साथ-साथ चिन्तन मनन की अपेक्षा होती है। इसके लिए साहित्य-विवेक और भावकत्व की आवश्यकता होती है।⁴ काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों और मनीषियों पर युगल प्रसाद जी की समझ जितनी बोधगम्य है उतनी ही स्पष्टता आधुनिकतावादी साहित्य सिद्धान्तों और रचनाकारों को लेकर भी है। एक तरफ आचार्य अभिनव गुप्त पर लिखते हैं, तो दूसरी तरफ समकालीन आलोचना में मैनेजर पाण्डेय के अवदान पर विचार करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल चालीस आलोचनात्मक आलेख हैं। इसे खण्डों में विभाजित नहीं किया गया। पर फिर भी चिन्तन-चिंतक, सर्जक-सृजन और सैद्धान्तिक सिद्धान्तों पर क्रमबद्ध रूप में

विचार प्रस्तुत किए गए हैं। आरम्भ में भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों के प्रति उनका लगाव परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति के प्रति लेखक की प्रगाढ़ आस्था है। पर आज बजारवाद, भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण, उत्तर आधुनिकता जहाँ संस्कृति के लिए बड़े खतरे के रूप में उभर रहे हैं। उत्तर आधुनिकता की चकाचैंध जहाँ युवा वर्ग को प्रभावित कर रही है, तो दूसरी ओर साहित्यकार को भी आकर्षित कर रही है। ऐसी कटु स्थितियों में भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था भारतीयता के प्रति उनके समर्पण भाव को उद्घोषित करता है। लेखक ने साहित्य सृजन के मूल में राष्ट्रीय सरोकार को ही सर्वोपरि माना है। युगल किशोर प्रसाद लिखते हैं “साहित्य क्यों और किसलिए? इसलिए साहित्य व्यष्टि से लेकर समष्टि, राज्य से लेकर राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्ध।⁵

लेखक विश्व कवि टैगोर के काव्य में सत्-चित् और आनन्द के दर्शन करते हैं। टैगोर की सौन्दर्य चेतना उनके काव्य, नाटक और चित्रकला सभी में मुखरित होती है। उनकी सौन्दर्य दृष्टि में सत्य ही सुन्दर है और सुन्दर है तो उसमें शिव भाव भी लिप्त है।

हिन्दी काव्य ने राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हिन्दी में नवजागरण का यह स्वर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से दिखाई पड़ता है, तो भारतीय भाषा के काव्य में भी पुनर्जागरण का स्वर देखा जा सकता है।

युगल किशोर प्रसाद हरिवंशराय बच्चन के बाह्य व्यक्तित्व को तो चित्ताकर्षक बताते ही हैं पर उनकी कविता के बोल न केवल जिह्वा पर चढ़ते बल्कि हृदय में कहीं उतर जाते थे। लेखक ने बच्चन की कविता की यात्रा को करुण से उत्साह, आह्लाद और जीवन्तता की ओर प्रस्थान माना है, शिवमंगल सिंह सुमन रागात्मकता, जनकल्याण तथा जनजीवन की भावनाओं को स्वर देने वाले कवि हैं, यह मानवता के संरक्षक रहे हैं तथा इनकी कविता लोक कल्याण केन्द्रित रहती है। उनकी कृतियों में राष्ट्रीयता के स्वर किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहते हैं। युगल किशोर प्रसाद जी राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रमुख पंक्ति में डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन को राष्ट्रीय चेतना से उद्घोषित कवि मानते हैं। सुमन जी के प्रति जहाँ युगल किशोर जी का भावात्मक लगाव दृष्टिगोचर होता है वहीं केदारनाथ सिंह की कविताओं में स्त्री-विमर्श के स्वरों को रेखांकित करते हैं।

लेखक पंजाब की हिन्दी कवयित्रियों के माध्यम से पंजाब के विभिन्न पक्षों को भी उभारते हैं। समाज की विभिन्न विसंगतियों को भी इन कवयित्रियों ने कविता का विषय बनाया है। पंजाब की कवयित्रियों का मुख्य विषय नारी और उसके विविध पक्षों पर केन्द्रित है।

लेखक का मानना है कि राष्ट्रीय अस्मिता का बड़ा दायित्व साहित्य पर ही होता है। पर लेखक ने समकालीन हिन्दी कविता की असंगतियों पर भी तीखी टिप्पणी की है। लेखक ने प्रवासी लेखिका अंजना संधीर पर भी लेखनी चलायी है जिसमें लेखिका के- अमरीकी जीवन-शैली विषयक विचारों के यथार्थानुसंग की प्रशंसा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में महत्वपूर्ण स्त्री कथाकार मन्नू भण्डारी पर तीन आलेख हैं। एक आलेख में उनकी आत्मकथा का विश्लेषणात्मक अध्ययन मनन है। जिसमें राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के दाम्पत्य जीवन की त्रासदी का चित्र है। दूसरा लेख मन्नू भण्डारी की कहानियों में स्त्री की मज़बूती को दर्शाता है। तीसरा लेख कथा साहित्य के साथ-साथ आत्मकथा पर व्यक्त विचार लेखक के निष्पक्ष गहन विश्लेषण, विवेचन क्षमता को परिलक्षित करता है।

युगल प्रसाद किशोर जी राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव' को हिन्दू-मुस्लिम एकता का संसूचक मानते हैं, 'आधा गाँव' स्वतन्त्र भारत के ऐसे गाँव की कथा है जिनके पात्रों में द्वन्द्व-अन्तर्द्वन्द्व को लेखक ने बखूबी प्रस्तुत किया है। लेखक ने जगदीश चन्द्र माथुर के हिन्दी नाटकों पर भी बड़ी निष्पक्षता से अपनी राय प्रस्तुत की है। 'कोणार्क', शारदीया और 'पहला राजा' में जहाँ ऐतिहासिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आधार बनाया गया है वहीं 'दशरथ नंदन' और 'रघुकुल रीति' में राम कथा का पुनराख्यान है। माथुर जी की एकांकी 'पृथ्वीराज की आँखों को भी बहुत लोकप्रियता मिली। लेखक माथुर जी को रंगशिल्पी नाटककार मानता है।⁶

लेखक डॉ. लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' की आलोचना दृष्टि को निष्पक्ष मानते हैं तथा उनके विचारों को मानवतावादी मानते हैं। वह जीवन और साहित्य के सम्बन्ध को बल देने वालों में से हैं। पं. दीन दयाल की दृष्टि को वह राष्ट्र भक्ति और सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध मानते हैं, नामवर सिंह की कृति 'दूसरी परम्परा की खोज' पर लेखक का विस्तृत आलेख दर्ज है जिसमें पुस्तक के प्रत्येक अध्याय पर विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। केदारनाथ सिंह को लेखक भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा सम्पन्न मानते हैं तो मैनेजर पाण्डेय को हिन्दी साहित्य लेखन परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी मानते हैं। मैनेजर पाण्डेय अपने समय के सवालियों पर सवांदा रचते हैं और दूसरों को भी इसे समझाने में प्रयास रत हैं।

युगल किशोर प्रसाद अभिनव गुप्त की आलोचकीय दृष्टि विषयक लिखते हैं “अभिनव गुप्त ने अपनी तलस्पर्शी प्रज्ञा से अपने पूर्व-पूर्व की गुरु परम्परा में संस्थापित इसी शिवदृष्टि का अनुभावन करते हुए अपने कालजयी ग्रन्थों की रचना की हैं।.....‘त्रिक-दर्शन’ को समझना है तो अभिनव गुप्त विरचित ग्रन्थों का गहन अध्ययन आवश्यक है। त्रिक-दर्शन में भारत विद्या का सनातनधर्मी विचार पक्ष है जिसे भारत का समाज अनादि युग से अपने आचरण में कर्मसिद्ध करता आया है।”⁷

लेखक राहुल सांकृत्यायन जी के लेखन को जातिवाद, रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता से परे का मानते हैं और उनके पद्मिहों का अनुकरण करने की प्रेरणा देते हैं शेरजंग गर्ग की रचनाओं का विश्लेषण भी गहनता से करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में मीडिया तथा पत्रकारिता से जुड़े दो आलेख हैं। इनमें हिन्दी पत्रकारिता के भूत, वर्तमान तथा भाविष्य पर विस्तृत वर्णन है। गाँधीवादी विचारधारा का विभिन्न आधारों पर उल्लंघन हो रहा है। मीडिया के दो प्रमुख विचारक मार्शल मैकलुहान तथा नोअम चाँमस्की हैं। मार्शल मैकलुहान ने ‘वैश्विक गाँव’ तथा ‘माध्यम ही संदेश है’ की अवधारणा दी थी, जो आज 21वीं सदी में सूचना विस्फोट के कारण सच हो रही है। नोअम चाँमस्की का मानना था कि इंटरनेट को निजी क्षेत्र को देना लोकतंत्र पर गहरी चोट है। इंटरनेट सबके लिए सुलभ होना चाहिए तथा माइक्रोसॉफ्ट या अन्य किसी अमीर व्यक्ति के चुंगल से इसे मुक्त करना चाहिए। इस प्रकार उनके मीडिया जगत को लेकर विचार कटु यथार्थ को व्यक्त करते हैं।⁸

युगल जी अपने आलेख ‘नाटक उद्भव एवं विकास’में नाटक के विकास के चार क्रम बताते हैं- पहला युग भारतेन्दु युग, दूसरा युग प्रसाद युग, तीसरा युग हरिकृष्ण प्रेमी से आरम्भ होता है। चौथा युग डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल युग है। इनका मानना है कि स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात् नाटकों की जो प्रगति देखने को मिलती है वो आज धीमी तथा ढीली पड़ गई है। वर्तमान में नाटककारों का जीवन मूल्यों की रक्षा के प्रति कड़ा दायित्व बनता है।⁹

व्यंग्य को लेकर युगल किशोर प्रसाद लिखते हैं- “दुर्गुणी व्यक्ति अपने किए पर सार्वजनिक पश्चात्ताप करता है और व्यंग्याग्नि में तपकर वह कंचन की तरह बेदाग हो जाता है।¹⁰ व्यंग्य आज स्वतन्त्र विधा के रूप में हमारे सामने है। व्यंग्य कहीं जन्मजात होता है, तो कहीं पारिवेशिक वातावरण की उपज भी होता है, युगल जी आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को व्यंग्य का

जनक मानते हैं और 'अंधेर नगरी नाटिका को उनका सशक्त प्रहसन बताते हैं तो दूसरी ओर हरिशंकर परसाई और शरद जोशी का व्यंग्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान बताते हैं। साहित्य की सभी विधाओं, कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, रिपोर्ताज आदि सभी में व्यंग्य का प्रयोग हो रहा है। स्वतन्त्रता से पूर्व चाँद, माधुरी, विश्वमित्र आदि पत्रिकाएं व्यंग्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेखक का मानना है कि आज साहित्य पर हो रहे अपसंस्कृति के आक्रमण से व्यंग्य शास्त्र रूप में सामने खड़ा है तथा इसका भविष्य उज्ज्वल ही है।

युगल किशोर जी की दृष्टि में बाल साहित्य टैक्रीकल साहित्य है। एक बालक को अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, जीवनदृष्टि, इतिहास दार्शनिक सिद्धान्तों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसके लिए ज्ञानात्मक और हितात्मक साहित्य का होना जरूरी है। बाल साहित्य किसी भी विधा में लिखा जाए पर उसका लक्ष्य बाल पीढ़ी में उत्साह का निर्माण करना होना चाहिए।

लेखक गीत की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि गीत व्यक्तिगत रागात्मकता की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। आधुनिक काल में गीत नव्य रूप में उभरे है। महादेवी वर्मा ने जहाँ गीतों में जीवन्तता प्रदान की वही प्रसाद पंत, निराला, नवीन, दिनकर, चतुर्वेदी भी गीतों की ओर आकृष्ट हुए। भोपाल गीत प्रधान पत्रिकाओं के प्रकाशन में सबसे आगे है। नचिकेता, रमेश जैन, यशोधरा राठौर, सुभद्रा वीरेन्द्र, सुबोध कुमार, सुधाकर आदि गीत-नवगीत विधा को नवजीवन प्रदान कर रहे हैं। गीत सरसभावों की अभिव्यक्ति है इसका जीवन्त रहना अत्यन्त आवश्यक है।

राजस्थान की लोकभाषा और साहित्य पर चर्चा करते हुए युगल किशोर प्रसाद जी बताते हैं कि राजस्थान की सभी भाषाओं विशेषकर मारवाडी, हाडौती, ढूढाँनी, मेवाडी तथा मेवाती का साहित्य राजस्थानी के नाम पर एक स्थान पर संग्रहित मिल जाता है। सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात यह है कि राजस्थानी की विभिन्न भाषाओं को केन्द्रीय अकादमी से लेकर विश्वविद्यालयों तक राजस्थानी के नाम से स्वीकार किया जाता है।

'लोक विज्ञान और भारतीय साहित्य' में लेखक इस बात पर बल देते हैं कि इक्कीसवीं सदी भारत के विकास की सदी होगी और यह भारतीय भाषाओं में लिखे विज्ञान साहित्य से ही सम्भव हो पाएगा।

वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को किन-किन संघर्षों और समस्याओं से गुजरना पड़ रहा है शासन-प्रशासन का इसमें कितना और क्या योगदान रहा है। केवल हिन्दी

दिवस या पखवाड़ा मानने से हम इससे जुड़ी समस्याओं का समाधान निकाल पाएंगे। मानक हिन्दी शिक्षण के लिए प्रयोगशालाएँ बनानी होगी, भाषाओं के प्रशिक्षण केन्द्र खोलने होंगे। वर्तनी, उच्चारण, लिपि तथा व्याकरण पर विशेष बल देना होगा।

हिन्दी के प्रति चिन्ता व्यक्त करते वह लिखते हैं- केवल हिन्दी दिवस मनाने की औपचारिकता से इसकी रक्षा हो पाएगी। हिन्दी अपने बल पर अन्तरराष्ट्रीय भाषा बन चुकी है पर क्या राष्ट्रीय स्तर पर भी उसे प्राथमिकता कभी मिल पाएगी। हिन्दी प्रदेश हो या अहिन्दी प्रदेश हिन्दी के समाचार पत्र ही अधिक छपते और बिकते हैं। हिन्दी की पत्रिकाएँ प्रशंसनीय हैं फिल्मों प्रशंसा के योग्य हैं हिन्दी को विस्तार देने में धार्मिक संस्थाएँ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। पर आज गहनता से राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की प्राथमिकता पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत पुस्तक 'युगल किशोर प्रसाद की आलोचना दृष्टि' में संकलित आलेख लेखकीय ईमानदारी को स्वयं सिद्ध करते हैं। युगल किशोर जी की यह विशिष्टता रही है कि आलोच्य विषय का गहन अध्ययन-मनन, विवेचन-विश्लेषण बड़ी निष्पक्षता से करते हैं। विविध विषयों पर उनके आलोचकीय आलेख उनकी बहुज्ञता के परिचायक हैं। भाषा पर इनकी विशेष पकड़ है। निष्पक्ष एवं सपाट अभिव्यक्ति के कारण इनके आलेखों की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध है। इनकी आलोचकीय दृष्टि व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्त है। विषय पुरातन हो या आधुनिक युगल जी संतुलित मूल्यांकन करते हैं। इनकी आलोचना किसी भी पूर्वाग्रह से मुक्त अपना विशिष्ट दृष्टिकोण रखती है। भारतीय संस्कृति, जीवन-मूल्यों और मान्यताओं के प्रति इनका विशेष मोह है इसलिए भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हैं। इनकी भाषा सुपाठ्य एवं आकृष्ट करने वाली है इनके आलेख पाठक को शुरू से लेकर अन्त तक पढ़ने के लिए बाध्य कर देते हैं। इनकी लेखन शैली इनकी विश्लेषण क्षमता को उजागर करती है। साथ ही इनकी शैली इनकी परिपक्वता, विस्तृत ज्ञान, तर्क संगतता एवं इनकी कुशल क्षमता की परिचायक है।

सम्पादन का कार्य बहुत ही परिश्रमयुक्त एवं दायित्वपूर्ण कार्य है। डॉ. संजय चैहान ने युगल किशोर प्रसाद के आलोच्य विषयों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण लेखों या यह कहा जाए कि हिन्दी की अनमोल निधि को पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत कर बहुत सराहनीय, प्रशंसनीय एवं महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस कड़े परिश्रम के लिए वह साधुवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों, आलोचकों रचनाओं तथा अनेकानेक दृष्टियों से पाठको का ज्ञानवर्धन करती है तथा महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। यह पुस्तक पठनीय, संग्रहणीय, प्रासंगिक एवं उपयोगी है

सन्दर्भ सूची

1. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियों पृ-637
2. शान्ति स्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त पृ-149
3. युगल प्रसाद किशोर की आलोचना दृष्टि, संपा संजय चैहान, पृ-21
4. हिन्दी आलोचना और उसके आर-पार डाॅ॰ शीतांशु से साक्षात्कार संपा सपना शर्मा, पृ-17
5. युगल प्रसाद किशोर की आलोचना दृष्टि, संपा संजय चैहान, पृ-20
6. वही पृ-151
7. वही पृ-209
8. वही पृ-237
9. वही पृ-244
10. वही पृ-245

भारतीय भाषाओं के समन्वय में हिन्दी की भूमिका

डॉ. ज्योति गोगिया

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर

भारतीय साहित्य कई मायनों में एक अमूर्त संकल्पना रही है। इसका अमूर्त होना भी सकारण है। विविधताएं इस देश की विशेषता रही हैं परंतु विविधताओं का अस्तित्व इसके विकास का बाधक तत्व नहीं कहा जा सकता। भारत के संदर्भ में वह साधक ही रहा। ये विविधताएं भारतीय संस्कृति के विकास में गुणकारी तत्व हैं। दृष्टिकोण की विशालता, समन्वय व सद्भावना किसी उदात्त संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलू हैं। भारतीय संस्कृति समन्वय व समरसता की संस्कृति है।

भारतीय साहित्य मूलतः एक ही है पर उसके टांके अलग-अलग भाषाओं से जुड़े हुए हैं। केन्द्रीय साहित्य अकादमी का यह आदर्श कि 'भारतीय साहित्य अलग-अलग भाषाओं में लिखा हुआ एक ही साहित्य है।' इसी दृष्टिकोण को प्रतिपादित करता है कि 'भारतीय साहित्य अलग-अलग भाषाओं में चाहे लिखा है, पर उसकी मूल-चेतना एक ही है। हमारी भाषाओं की सांस्कृतिक विरासत एक ही है।¹ भारतीय साहित्य के प्राचीनकाल की बात करें तो प्राचीन समय में संस्कृत साहित्य की बड़ी महिमा और गरिमा रही। उसके महत्व से अन्य भाषाएं भी लाभ उठाती रहीं। संस्कृत के साहित्यकार भारत के विभिन्न प्रांतों के रहने वाले थे। वेदों की रचना पंजाब की धरती पर हुई।

भारतीय काव्यशास्त्र के अधिकांश आचार्य कश्मीर के थे। कालिदास मध्य प्रदेश के थे। भारत की विभिन्न भाषाओं में रामयणों की रचना और व्याख्याएँ हुईं। सरलादास, कृतिदास, तुलसीदास, रंगनाथ, कम्बर, पम्पा, संकरदेव जैसे कवियों की भाषा एक नहीं थी। लेकिन वाल्मीकि रामायण की चेतना को आत्मसात् करने के कारण उनके काव्य में कई समानताएँ आईं। संस्कृत एक विशाल

वटवृक्ष है। अन्य भाषाएं इसकी शाखा-प्रशाखा हैं।² प्राचीन काल को जो स्थान व संबंध स्थापना का कार्य संस्कृत कर रही थी, आज वही भूमिका हिन्दी निभा रही है।

आज विभिन्न भाषाओं के कई मशहूर लेखक भारतवासियों के लिए अपने-अपने अजनबी हैं। इस अजनबीपन की दीवार को तोड़ सांस्कृतिक समन्वय का कार्य हिन्दी द्वारा संभव है। देश की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्यिक कृतियों को राष्ट्रीय संदर्भ में परखने-पहचानने के लिए हिन्दी ही एक महत्वपूर्ण कसौटी है। देश की सामासिक संस्कृति की सशक्त संवहिना बनने की शक्ति हिन्दी में निहित है।³ अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में रहकर स्वयं को विकसित होने की शक्ति हिन्दी ने अर्जित की है। महात्मा गांधी ने भी राष्ट्र के लिए एक आम भाषा की अनिवार्यता पर बल दिया था। उनकी हिन्दी के हित की बात आज भी प्रासंगिक है।

अनुवाद भी भारतीय भाषाओं को एक साथ लाने में अपनी प्रभावकारी भूमिका निभा सकता है। प्रश्न उठता है कि हिन्दी अथवा अंग्रेजी दोनों में से इस दृष्टिकोण से कौन सी भाषा महत्वपूर्ण है। निश्चय ही जहां हिन्दी विचारों के आदान-प्रदान की बड़ी भाषा है, वहाँ अंग्रेजी तो ठहर ही नहीं सकती। पंजाबी की मशहूर कवियत्री अमृता प्रीतम के शब्दों में, 'मेरे ख्याल से हिन्दी हमारी संस्कृति और चिन्तन के नजदीक है। अंग्रेजी एक उन्नत जवान होते हुए भी हमारी संस्कृति से दूर है। हमारे आदान-प्रदान की पहली कड़ी हिन्दी बन सकती है। तभी तो अनुवाद सुगम होगा। घरों, खेतों और गलियों में प्रयुक्त भाषा के प्रयोग अनुवाद में भी आए। अगर हम लोगों की पहुंच के बाहर ही भाषा का प्रयोग करते हैं तो अनुवाद को कोई नहीं पढ़ेगा।' निश्चय ही जो भाषा अपनी संस्कृति के निकट होगी, वही देश में समन्वय और समरसता स्थापित कर सकेगा। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसमें समय-समय पर अन्य भाषाओं का श्रेष्ठ साहित्य अनुदित होता रहा है।

भारतेन्दु युग से लेकर आज तक आधुनिक काल को ही देखें तो कितने साहित्यकारों ने यह गरिमामय देश भक्ति का काम किया है। हरिऔध, गुप्त, निराला, अज्ञेय कितने ही नाम इस कोटि में आते हैं। अखिल भारतीय पुरस्कारों की घोषणा के लिए विचरार्थ कृतियों का हिन्दी अनुवाद इस दिशा में अनिवार्य माना जाता है। पुरस्कारों की घोषणा के बाद भी सर्वाधिक व अनिवार्यता इनके अनुवाद हिन्दी में होते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन आज की मांग है। इसके लिए भी अनुवाद की आवश्यकता होती है। भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य का अनुवाद जब हिन्दी में होता है तो उसके तुलनात्मक अध्ययन की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। इन अनुवादों में भारतीय साहित्य की एकता का

तत्त्व उभर कर आता है। तुलसीदास और तुंचन एषुन्नच्छन कृत रामायणों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। कबीर और एन्तानम के विचारों में कई समानताएं पाई गई हैं। सूर और चेरुइशेरी के कृष्ण-

काव्यों में कई समान तत्त्व हैं। प्रेमचंद कृत गोदान व तकनी कृत दो सेर धान में, यशपाल के मनुष्क के रूप और केशवदास के नाली से में तुलना में ये कृतियां एक ही चेतना से अनुप्राणित दिखाई देती हैं।

हिन्दी वस्तुतः सब भाषाओं को जोड़ने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी है। भाषाओं के बीच भाईचारे का रिश्ता बनाए रखना सांस्कृतिक समन्वय के लिए आवश्यक है।

हिन्दी की भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए सरकारी तौर पर साहित्यकारों व अनुवादकों को देश भ्रमण का मौका मिलना चाहिए। हिन्दीतर प्रांतीय हिन्दी सेवी संगठनों को हिंदी प्रांत में यात्रा का सुअवसर मिलना चाहिए। उसी प्रकार उत्तर के संगठनों को दक्षिण भारत आने का प्रावधान होना चाहिए। हिंदी संबंधी नीति निर्धारण में अहिन्दी भाषी समितियों की सेवाएं ली जानी चाहिए। समता-ममता-सहृदयता-समझदारी के चौराहे पर खड़े होकर भी समन्वय की बात सोच सकते हैं। भारतीय भाषाओं की सड़कें हिन्दी के चौराहे पर मिलती हैं। आपसी संपर्क के रास्ते को लंबा-चौड़ा बनाना है। भाषाओं का सुखद समन्वयपूर्ण संयुक्त परिवार का वातावरण बनाना होगा व हिन्दी को इस संयुक्त परिवार के मुखिया की भूमिका निभानी है। हिन्दी इस सहृदय का वहन करती आई है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. आरसू, भारतीय साहित्य : आशा और आस्था, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
2. वसंत त्रयम्बक शेव, संस्कृत-वटवृक्ष की शाखाएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
3. डॉ. आरसू, वही, पृ. - 26
4. अमृत प्रीतम, पृ. - 26, वही

शिक्षा और जीवन मूल्य

डॉ रूपिका शर्मा

प्राध्यापिका, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

कन्या महाविद्यालय, जालंधर

मानव सृष्टि की सर्वोत्तम कृति है। प्रत्येक मानव अपने आचार-व्यवहार अनुभव और विचार में अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। इसका कारण है जीवन मूल्यों की भिन्नता। मूल्य मानव व्यक्तित्व के वे मूलभूत गुण हैं जो उसको जीवन के उद्देश्य निर्धारण करने में सहायक होते हैं। मानव का उसके आस-पास के सामाजिक वातावरण के साथ कैसा संबंध होगा, इसके निर्धारण में मूल्य अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मूल्य समाज में अनादि काल से अस्तित्व में रहे हैं, परंतु परिवर्तनशील समय के साथ-साथ तारतम्य बैठते हुए मूल्यों में परिवर्तन होना भी स्वाभाविक है। किन्तु किसी भी कालखंड में मूल्यविहीन समाज की परिकल्पना कठिन ही नहीं असंभव है। यह सर्वविदित है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति देश के प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त विज्ञान व तकनीक के उच्च स्तर पर भी निर्भर करती है, परन्तु देश के नागरिकों में उच्च जीवन मूल्यों के अभाव में अपनी प्रगति को अक्षुण्ण बनाए रख पाना कठिन होता है। मूल्य आधारित शिक्षा विद्यार्थियों के आध्यात्मिक, नैतिक सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए एक सुनिश्चित आधारशिला प्रदान करती है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा है “बुद्धिमत्ता और चरित्र ही सच्ची शिक्षा का लक्ष्य है”।

किसी भी सभ्य समाज के लिए शिक्षा प्राण हैं तथा जीवन मूल्य उसकी आत्मा मूल्यों का संबंध जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण से है, और व्यक्ति के जीवन में मूल्यपरक दृष्टिकोण का विकास समाजीकरण की प्रक्रिया से जुड़ा है। रेमंड ने कहा है “समाज विहीन व्यक्ति एक कोरी कल्पना है”। मूल्य शब्दों को अंग्रेजी में वैल्यू कहते हैं और वैल्यू लैटिन भाषा के वैलियर से बना है अंग्रेजी में इसका अर्थ एबिलिटी यूटिलिटी, इम्पोर्टेंट तथा हिंदी में इसका अर्थ है योग्यता, उपयोगिता या

मूल्य की अवधारणा:

मूल्य वे अवधारणा या मानक हैं, जो मूल्यांकन करते हैं कि किसी व्यक्ति की भावनाएँ, विचार, कार्य वांछनीय हैं अथवा अवांछनीय। पारदर्शी प्राकृतिक एवं न्यायोचित अदान-प्रदान का ज्ञान मूल्य की परिधि में ही आता है। व्यावहारिक जीवन में मूल्य वस्तु, भाव अथवा विचार की उस क्षमता को व्यक्त करता है जो मानव की उपयुक्त, न्यायसंगत आवश्यकताओं, और इच्छाओं को संतुष्टि प्रदान करता है। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मूल्य शब्द अर्थशास्त्र की परिधि से निकलकर दर्शन, तर्क, धर्म, मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रयुक्त हुआ। मूल्य शिक्षा वास्तव में हमें इस योग्य बनाती है कि हम उचित अनुचित, करणीय अकरणीय में विवेक कर सकें।

मूल्यों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। पेरी ने मूल्यों को नकारात्मक सकारात्मक विकासवादी वास्तविक आदि श्रेणियों में विभाजित किया। इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने मूल्यों को सुखवादी, सौंदर्यवादी, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, तथा तार्किक मूल्यों में बांटा है। अलपोर्ट तथा वर्नर ने मूल्यों को सैद्धांतिक, आर्थिक, सौंदर्यात्मक सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक इन छह श्रेणियों में विभक्त किया। जे.ई. टर्नर ने मूल्यों को अमूर्त, मूर्त मूल्य में विभाजित किया है। अरवन सिंह के अनुसार मूल्य विभाजन निम्न प्रकार से है: जैविकीय मूल्य, पारजैविक और सामाजिक मूल्य। एनसीईआरटी ने डॉक्यूमेंट ऑफ सोशल मोरल एंड स्प्रिचुअल वैल्यूज़ इन एजुकेशन में 83 मूल्यों का उल्लेख किया है जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—अनुशासन सहनशीलता, समानता, विश्वसनीयता साहस, जिज्ञासा, अहिंसा, राष्ट्रीय एकता, देशहित, स्वच्छता आज्ञाकारिता व अन्य। मानव स्वभाव और समाज में हिंसा, कायरता, अन्याय, घृणा इत्यादि नकारात्मक मूल्य भी विद्यमान हैं जो मानव व्यक्तित्व एवं सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं किंतु इन नकारात्मक मूल्यों के विपरीत सहनशीलता, परोपकार, कर्तव्यपालन, संयम, सदाचार, विधि एवं कानून का सम्मान, व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था सकारात्मक मूल्य हैं और मूल्यपरक शिक्षा के अभिन्न अंग हैं। मूल्यपरक शिक्षा मनुष्य में संवेदनशीलता को विकसित करती है और उसे दूसरों से बेहतर तरीके से समझने की दृष्टि करती है। मूल्य मानव जीवन के वह आदर्श या लक्ष्य हैं जो उसके जीवन के लक्ष्य उद्देश्य तथा ध्येय का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की एक मूल्य प्रणाली होती है जिसके आधार पर वह निर्णय लेता है उसी प्रकार प्रत्येक समाज की भी अपनी एक मूल्य प्रणाली होती है और यह मूल्य प्रणाली ही उस समाज की संस्कृति कहलाती है। मूल्य ही

मनुष्य के जीवन के आदर्श, लक्ष्य, गंतव्य एवं साध्य बनते हैं जिन की प्राप्ति हेतु वे सतत प्रयत्नशील रहता है। मुख्यतः मूल्य की अवधारणा नैतिक शास्त्र एवं धर्म से संबंधित है। धर्म, दर्शन और शिक्षा तीनों आपस में संबंधित है और तीनों का ही मूल्यों से संबंध है। ये तीनों ही मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिए आवश्यक सोपान के रूप में कार्य करते हैं। धर्म तथा दर्शन का उद्देश्य नैतिक मूल्यों का विकास कर मनुष्य के जीवन को सार्थक बनाना है तो शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर उससे सामाजिक सामंजस्य के योग्य बनाना है। इस बदलते युग के साथ शिक्षा की सामग्री संदर्भ और प्रणाली निरंतर परिवर्तित होती रहती है इस बदलाव में एक पक्ष जो सदा केंद्रबिंदु के रूप में विद्यमान रहता है वह है मानव और मानवता और मानवता का आधार है मूल्य। 21 वीं शताब्दी के लिए शिक्षा पर यूनेस्को की रिपोर्ट 'शिक्षा आंतरिक स्रोत' (learning : The Treasure within) ऐसी शिक्षा के लिए सिफारिश करती है, जो संस्कृति के लिए निहित है और प्रगति के लिए प्रतिबद्ध

है रिपोर्ट में कहा गया है "एक सामंजस्यपूर्ण और एकीकृत व्यक्तित्व निर्मित करना क तब तक संभव नहीं होगा, जब तक शिक्षा प्रणाली संस्कृति, विरासत एवं परंपराओं के मूल्यों को विकसित नहीं करती"।

मूल्य आधारित शिक्षा का उद्देश्य :

शिक्षा की अवधारणा की व्याख्या करते हुए श्री अरविंद घोष ने कहा है कि सच्ची और वास्तविक शिक्षा वही है जो मानव की अंतर्निहित समस्त शक्ति को इस प्रकार विकसित करती है कि वह उनसे पूर्णतः लाभान्वित होते हैं। यह शिक्षा जीवन को सफल बनाने में मानव की सहायता करती है इसके अतिरिक्त यह शिक्षा जीवन के मन और आत्मा से जिसका वह अंश है, सत्य संबंध की स्थापना में सहायता देती है। "प्राचीन काल से ही यह कहा जाता है "सा विद्या या विमुक्तये" जिसका अर्थ है कि शिक्षा वह है, जो मुक्ति प्रदान करती है। ये छोटा सा वाक्यांश अनिवार्य रूप से मूल्य और शिक्षा का सार है और सदा प्रासंगिक भी है।

मूल्य शिक्षा का महत्व और प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा:

मूल्य आधारित शिक्षा किसी भी समाज एवं राष्ट्र को किसी भी प्रकार की बुराई, हिंसा, भ्रष्टाचार तथा उत्पीड़न के खिलाफ आधार प्रदान करती है। प्राचीन काल के महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र,

सांदीपनि एवं चाणक्य जैसे अध्यापकों ने श्री राम श्री कृष्ण ,एवं सम्राट चंद्रगुप्त जैसे विद्यार्थियों को आकार दिया था यह उनकी मूल्य आधारित सर्वांगीण शिक्षा का ही सुफल था कि इन महानायकों ने आलोक स्तम्भ बनकर समाज का मार्गदर्शन किया। अध्यापकों का अपना व्यवहार एवं चरित्र भी जन सामान्य के जीवन में मूल्यों के संप्रेषण अथवा प्रेरणा हेतु एक प्रेरक का कार्य करता है इस कारण से अध्यापकों का जीवन भी जीवन मूल्यों से युक्त होना अत्यंत आवश्यक है वर्तमान परिस्थितियों में इसकी आवश्यकता और औचित्य और भी बढ़ जाता है। प्राचीन काल से ही भारत की ज्ञान परंपरा की गरिमा पूरे विश्व में व्याप्त रही है इसी के कारण भारत विश्व गुरु के रूप में सुविख्यात रहा है जब विश्व के अन्य देशों की सभ्यताएं अपनी शैशव अवस्था में थी तब भारत में नालंदा तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय इस ज्ञान परंपरा से जगमगा रहे थे । सच्चे अर्थों में भारत पूरे विश्व को अपने मूल्य आधारित ज्ञान से प्रकाशित कर रहा था। इसी भूमि पर सबसे पहले मनुष्य प्रकृति तथा अंतर जगत के रहस्य की जिज्ञासाओं का अंकुर फूटा था जिसने इस ज्ञान परंपरा को जन्म दिया इसी परंपरा के तहत तत्वज्ञान का प्रकाश हुआ । इसी ज्ञान परंपरा ने धर्म अर्थ काम मोक्ष को इस अर्थ में गढ़ा कि संसार का ज्ञान इसके सामने फीका रह गया । ज्ञान परंपरा व मूल्यों की उपज होने की वजह से आज भी हम विश्वबंधुत्व ,रामराज्य का सपना देखते हैं यह भारत भूमि हमेशा से ही धार्मिक,आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा का केंद्र रही है वह आज भी अपने इतिहास को गौरवान्वित करती हुई भविष्य के लिए एक आशा की किरण का संदेश दे रही है। श्रीमद्भागवत गीता में ज्ञान परंपरा की महत्ता पर बल देते हुए स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है नाही ज्ञानेन सदृशं पवित्रम मही विद्यते अर्थात् इस संसार में ज्ञान के सामान पवित्र अन्य कुछ भी नहीं है । शक्ति प्रदर्शन हेतु या किसी अन्य व्यक्ति या राष्ट्र पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की कामना से नहीं स्वयं को संयमित रखने वह अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रखने में ही ज्ञान की सार्थकता है। भारतीय उस ज्ञान को अपूर्ण मानते हैं जो आत्म दर्शन कराने में समर्थ ना हो । शिक्षा का मूल उद्देश्य सभी ऋणों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करना था कस्त्वम कोअहम कुतः आयातःको मे जननी को मे तातः(भजगोविन्दं ,शंकराचार्य) इन प्रश्नों का उत्तर भारतीय ज्ञान ही प्रदान कर सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा तेन त्यक्तेन भुंजीथा का सूत्र देकर भोग के साथ-साथ त्याग करने की प्रेरणा व मूल्य भी प्रदान करता है। भारत की राजनीति भी प्राचीन काल से मूल्य पर आधारित रही चाणक्य नीति का स्थान इस क्षेत्र में सर्वोपरि है। प्रजा काहे तत्व प्रजातंत्र कि भारतीय राजनीति की मूल अवधारणा है। आज का विज्ञान प्रकृति के दोहन व शोषण को बढ़ावा देता है परंतु प्राचीन भारत में योग से सिद्ध विज्ञान प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर आत्मीयता व नैतिकता को संबल प्रदान करने वाला था । प्राचीन भारत में प्रकृति के प्रत्येक घटक की महत्ता सिद्ध करने और उसकी

रक्षा करने के लिए उसको जनमानस की आस्था के साथ जोड़ दिया गया था भारत की सबसे बड़ी नदी गंगा को माता के समान पूजने के पीछे यही कारण है। यहां एक वृक्ष को 10 पुत्रों के समान माना गया है “दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदेसमः पुत्रो दशपुत्रोसमो द्रुमः॥”

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा एवं शिक्षा प्रणाली की अनुपम देन है छात्र-छात्राओं में मूल्यों का विकास करना भारतीय ग्रंथ वेद पुराण उपनिषद नीतिशास्त्र ज्ञान अनुशासन सहनशीलता परोपकार शांति धर्म परायणता व कर्म का संदेश देते हैं जो किसी भी समाज को प्रगतिशील बनाने में सहायक होता है धर्म अर्थ काम और मोक्ष के मध्य समन्वय बनाने की कला भारतीय शिक्षा प्रणाली सिखाती थी परंतु यह अत्यधिक दुखद स्थिति है कि आज हम केवल अथवा काम पर ही बल देते हैं जिससे हमारे मूल्यों का धीरे-धीरे पतन होता जा रहा है मूल्य आधारित शिक्षा के तहत गुरुकुल में वेदों का अध्ययन कराया जाता था समाज के लिए बने नियमों का उत्कृष्ट ग्रंथ मनुस्मृति छात्रों को धृति क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रिय निग्रह सत्य व सहिष्णुता की शिक्षा देता है जिससे छात्र अपने जीवन का सर्वांगीण विकास करते हुए सफलता के मार्ग पर अग्रसर हो सकें। बौद्ध तथा जैन दर्शन भी सत्य, अहिंसा अपरिग्रह ब्रह्मचर्य जैसे महान मूल्यों को अपनाने की शिक्षा देते हैं जीवन में मित्रता, करुणा, उपकार जीवों पर दया भारतीय ज्ञान परंपरा की शिक्षा प्रणाली के केंद्र बिंदु रहे हैं। संपूर्ण मानवीय समाज को भारतीय ज्ञान परंपरा की अद्भुत भेंट श्रीमद्भगवद्गीता में भी नैतिक मूल्यों को अपनाते हुए धर्म परायण वा निष्काम कर्म करने की प्रेरणा दी गई है। अहम से सोहम की यात्रा करना ही मूल्य आधारित शिक्षा का अध्ययन है भारतीय ज्ञान परंपरा मातृ देवो भव, पितृ देवो अतिथि देवो भव की सीख देती है जिस पर चलकर समाज एक उत्कृष्ट जीवन शैली को प्राप्त कर सकता है। भारतीय जीवन में परोपकार का सदा ऊंचा स्थान रहा है अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचयद्वयं, परोपकारः पापाय परपीडनम इन्हीं मूल्यों पर चलकर आज भी संसार में वास्तविक शांति एवं सौहार्द की स्थापना की जा सकती है। आधुनिक युग में भी भारत के महापुरुषों तथा शिक्षाविदों ने मूल्य आधारित शिक्षा को अपनाने पर बल दिया है स्वामी विवेकानंद महात्मा गांधी श्री अरविंद आदि सभी विद्वान भारतीय ज्ञान परंपरा को अपनाने पर बल देते हैं। स्वामी विवेकानंद जी मूल्य आधारित शिक्षा को ही वास्तविक शिक्षा कहते हैं। महात्मा गांधी भी छात्रों को स्वावलंबी बनाने की तालीम देकर देश व समाज के लिए उन्हें हितकर बनने की शिक्षा को ही वास्तविक शिक्षा मानते हैं। श्री रविंद्र नाथ ठाकुर भी ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहां मनुष्य सभी प्रकार के भयों से मुक्त होकर शांतिपूर्ण जीवन जी सके। श्री अरविंद के अनुसार जबसे जीवन मूल्यों का शिक्षा से विद्रोह हो गया है सबसे देशवासी धर्म भ्रष्ट तथा लक्ष्य भ्रष्ट हो गए हैं। सन 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आए सभी शिक्षा आयोगों ने मूल्य आधारित शिक्षा को आवश्यक एवं

उचित मानते हुए अनेक महत्वपूर्ण परामर्श दिए। राधाकृष्णन आयोग ने धर्मनिरपेक्षता, अध्यात्मिक ज्ञान व नैतिक मूल्य पर जोर दिया छात्रों को धर्म ग्रंथों का सार बताने के सुझाव के साथ-साथ इस आयोग ने विद्यालयों में ध्यान को विशेष रूप से अपनाने का सुझाव दिया। मुदालियर आयोग 1952- 53 ने भी विद्यालयों में सामूहिक प्रार्थना वह प्रेरक प्रसंग से अवगत कराते हुए छात्रों के चरित्र निर्माण की बात कही। कोठारी आयोग ने भी छात्रों में शिक्षा के द्वारा सामाजिक वातावरण की भावना का विकास, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति निष्ठा, विशिष्ट साहित्य के अध्ययन की भावना का विकास, विभिन्न धर्मों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन जैसे विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने की अनुशंसा की। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस बात पर गहरी चिंता प्रकट की गई कि जीवन के लिए सभी आवश्यक मूल्यों का हास हो रहा है और मूल्यों पर से लोगों का विश्वास घटता जा रहा है। शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सके। 1988 में एनसीईआरटी ने प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जिससे प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कहा जाता है। नई शिक्षा नीति 2020 में भी विभिन्न संदर्भों में स्वभाषा, संस्कृति, नैतिक, उदात्त तथा श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के संरक्षण और प्रसार के लिए शिक्षा के प्रारूप और प्रणाली अपनाने की बात की गई है। संयुक्त राष्ट्र के द्वारा भी विश्व समाज के उत्थान और स्थायी विकास के जो 17 मानक निर्धारित किए गए हैं उसमें भी गुणवत्ता पूर्ण और मूल्याधारित सार्वभौमिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया है। विश्व समाज को शाश्वत जीवन मूल्यों के महत्व से अवगत करवाने और सर्वसमावेशी, कल्याणकारी विश्व समाज की पुनर्रचना में मूल्य शिक्षा का बहुत महत्व है सभी विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक सभी शिक्षा संस्थानों को इस संकल्प और विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिए प्रतिबद्ध एवं सार्थक प्रयास करने होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नई शिक्षा नीति 2020

2. शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक आधार: एस. एस. शर्मा, अंजना शर्मा, भार्गव बुक हाउस, आगरा।

३. शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार: सरोज सक्सेना, साहित्य प्रकाशन आगरा।

4.मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य : , आर.लालआर .पाण्डेय, बुक डिपो ,मेरठ |

5.मूल्य आधारित शिक्षा: रमेश पोखरियाल 'निशंक': प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली |

rashtriyashiksha.com

jagran.com

deshbandu.com

भूमंडलीकरण का दौर और हिंदी भाषा

डॉ तेजिंदर कौर

सहायक प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

हिन्दू कन्या कॉलेज ,कपूरथला

आज का युग भूमंडलीकरण अर्थात् ग्लोबलाइजेशन का युग है। इस प्रक्रिया से संपूर्ण विश्व एक परिवार के रूप में निकट आ रहा है जिसके चलते ही विश्व एक ग्लोबल विलेज बन गया है। भूमंडलीकरण का तात्पर्य विश्व बाजारवाद है। भूमंडलीकरण के दौर में भाषा की अहम् भूमिका है। भारत विश्व का सबसे बड़ा बाजार कहा जा सकता है और इस बाजार की माध्यम भाषा है हिंदी। भूमंडलीकरण के इस नाटकीय दौर में जहां तक हिंदी भाषा के प्रयोग का सवाल है तो यदि हिंदी सॉफ्टवेयर पूर्ण रूप से विकसित हुआ तो निःसंदेह हिंदी संसार की सबसे लोकप्रिय और प्रचलित भाषा बन सकती है। भूमंडलीकरण का सीधा-साधा व्यापक अर्थ है बाजरीकरण। सारे संसार में होने वाला प्रभाव या फैलाव व सार्वभौमिकता भूमंडलीकरण ही है। भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण परस्पर आदान-प्रदान की ऐसी प्रक्रिया है जो अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश द्वारा संचालित की जा रही है। कंपनियों और सरकारों के बीच एकीकरण कर रही है। बाजारवाद के वर्तमान समय में मानव मूल्यों के साथ-साथ जन जीवन का प्रत्येक क्षेत्र भी प्रभावित रहा है। प्रत्येक क्षेत्र इस बाजारवाद को स्वतः ही अपना रहे हैं।

“भारत का भूमंडलीकरण का दूसरा हिस्सा सूचना क्रांति द्वारा निभायी गयी विचारधारात्मक और संस्थागत भूमिका का जायजा लेता है।”

- भारत का भूमंडलीकरण, संपादक अभय कुमार दुबे, पृष्ठ - 50

जब साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान, दर्शन सभी पर बाजारवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव है तो भला भाषा कैसे इससे अछूती रह सकती है। अनुभव से यह बात सिद्ध होती है की भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं बल्कि मनुष्य की पहचान भी है। उसमें सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। समय के साथ होने वाले सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों की अनुगूंज उसमें सुनाई पड़ती है। भाषा पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का अध्ययन करने वाले विद्वान कहते हैं कि भूमंडलीकरण का पहला प्रहार भाषा पर ही होता है। भूमंडलीकरण का मूल सिद्धांत एकरूपता में है और भाषा एक होगी तो भूमंडलीकरण के विस्तार में भी मददगार साबित हो सकेगी। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने हिंदी भाषा की प्रवृत्ति भी बदली है और इसका स्वरूप भी। भूमंडलीकरण ने हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार में आशातीत वृद्धि कर दी है।

सूचना प्रौद्योगिकी ने भी हिंदी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके बिना ग्लोबल हिंदी की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज हिंदी का भूमंडलीकरण हो गया है और वह अपने उपस्थिति सिद्ध कर रही है। हिंदी दुनिया की सबसे सरल भाषा है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह जैसे बोली जाती है वैसे ही लिखी जाती है। इसीलिए बहुत राष्ट्रीय कंपनियों ने विज्ञापन के लिए हिंदी भाषा को चुना है। यही करने की भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में भी उभर कर सामने आई है।

“टेलीग्राफ, रेलवे और भाप की ताकत से चलने वाले जहाज उसके वाहक थे। वह ब्रिटिश साम्राज्य के कभी न अस्त होने वाले सूरज की बेरहम रोशनी में नहाई हुई थी। उसके मर्मस्थल में पाउंड स्टर्लिंग विराजमान था।”

- भारत का भूमंडलीकरण, संपादक अभय कुमार दुबे, पृष्ठ - 50

बाजार का सीधा संबंध ही भाषा से होता है। बाजार में ही भाषा के रूप बनते हैं और बिगड़ते हैं तथा कालांतर में स्थाई होते हैं। आज बाजार ने राष्ट्रीय सीमा तोड़ दी है तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं, सेवाओं, संसाधनों से युक्त आदान-प्रदान शुरू हो चुका है। इसी के साथ ही देश की भाषा के लिए विकास का मार्ग भी प्रस्तुत हुआ है। अगर विज्ञापन की हिंदी की बात की जाए तो वह भूमंडलीकरण के दौर में ऐसी हिंदी का विकास और संवर्धन हो रहा है। अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत के करीब 30 करोड़ का एक मध्यवर्गीय उपभोक्ता वर्ग है जिसके समीप पहुंचने के लिए हिंदी और भारतीय भाषाएं ही विशेष रूप से कारगर सिद्ध हो सकती हैं। अंतरराष्ट्रीय सेवाओं के क्षेत्र में हिंदी प्रयोग की असीम संभावनाएं आकर ले रही है। विज्ञापन की हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में हम शब्दों, वाक्यों, अभिव्यक्तियों और वाक्य संयोजनों का नया स्वरूप देखने को मिल रहा है। संचार माध्यम की भाषा के रूप में प्रयुक्त होने वाली हिंदी समस्त ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक विषयों से सहज ही जुड़ गई है। व्यवहार क्षेत्र की व्यापकता के कारण संचार माध्यम के सहारे हिंदी भाषा की भी सम्प्रेषणीयता का बहुमुखी विकास हो रहा है। राष्ट्रीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय चेतना में भी हिंदी आज सब प्रकार के आधुनिक संदर्भों को व्यक्त करने के अपने सामर्थ्य को विश्व के समक्ष प्रमाणित कर रही है।

बाजारवाद और वैश्वीकरण के दबावों ने हिंदी को ज़रूरत और मांग के अनुकूल ढालने की भूमिका भी निभाई है क्योंकि हिंदी भाषा का व्यापक प्रयोग जनसंचार माध्यम की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। दुनिया में हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं का भी वर्चस्व बढ़ा है। विश्व के कई भाषिक माध्यमों में इस यथार्थ का अनुभव भी किया जा रहा है। भारतीय भाषाओं की संवेदनशीलता, विलक्षण शब्द संपदा और अद्भुत शब्द शक्ति की वजह से यह संभव हो सका है। हिंदी राष्ट्रीय भाषा तो है ही लेकिन महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि हिंदी और भारतीय भाषाओं को केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता यह आज संचार माध्यमों की व्यवसायिकता तथा नैतिकता के मध्य सेतु के रूप में भी स्थापित हो चुकी है। हर भाषा-भाषी अपनी भाषा को

उत्कृष्ट एवं समृद्ध मानता है। भाषा को लेकर यह संकुचित रवैया ही भाषा के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

वर्तमान भारतीय हिंदी सिनेमा विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय है और भारतीय टीवी धारावाहिकों ने विदेशों में भी हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में पर्याप्त योगदान दिया है। विदेशी संचार माध्यम आज विशुद्ध हिंदी में प्रसारण करते हैं। रेडियो स्टेशन जापान, रेडियो चाइना, रेडियो इंटरनेशनल आदि अनेक विदेशी रेडियो स्टेशनों से आप नियमित हिंदी के कार्यक्रम सुन सकते हैं। भूमंडलीकरण के इस दौर में अगर हिंदी को जीवित रखते हुए इसका विकास करना है तो सबसे पहले हमें अपनी मानसिकता को सुधारना होगा साथ ही साथ हिंदी भाषा को लाभ के सिद्धांत तक सीमित न रखते हुए उसे और भी सरल और लचीली बनाने की आवश्यकता है। उसके व्यय करने के ढांचे पर ध्यान देना होगा और विज्ञापनों में व्याकरण के नियमों का उल्लंघन ना हो, इसकी हमें सतर्कता बरतनी होगी। इस प्रकार भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी भाषा को जीवित रखा जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तक हिंदी दुनिया में तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा थी परंतु सौभाग्यपूर्णतः आज स्थिति यह है कि यह दूसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा बन गई है और याद रहे कि हिंदी जानने वाले, समझने वाले, हिंदी भाषी देशी-विदेशी हिंदी भाषा प्रवक्ताओं को भी इसके लिए जोड़ लिया जाए तो कहा जा सकता है कि हिंदी दुनिया की प्रथम भाषा सिद्ध की जा सकती है। बाजार और हिंदी की इस अनुकूलता का एक बड़ा उदाहरण भी हो सकता है कि पिछले 5-7 वर्षों में संचार माध्यमों पर हिंदी के विज्ञापनों के अनुपात में 70% उछाल आया है।

इसका कारण यह है कि भारत रूपी इस बड़े बाजार में सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग मध्यम और निम्न वर्ग समाज का है जिसकी समझ और आस्था अंग्रेजी की अपेक्षा अपनी मातृभाषा व राष्ट्रभाषा से अधिक प्रभावित होती है। पर इस नए भाषिक परिवेश में विभिन्न संचार माध्यमों की भूमिका केंद्रीय हो गई है।

“हिंदी भाषा, भारत की भाषा कहिए या देश की भाषा, सम्पूर्ण देश को एक बनाए रखने में सक्षम है। भारत माता के माथे की बिंदी, हिंदी, आज विश्व के सरताज के रूप में सुशोभित हो रही है। आधिकारिक रूप में हिंदी समाचार-पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन, विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, सरकारी कार्यालयों में कार्य की भाषा बनी हुई है। हिंदी के प्रयोग को लेकर सकारात्मकता दिखाई देती है। व्यावसायिक स्तर पर यद्यपि विदेशी भाषा ने हमारे देश में अव्वल दर्जा प्राप्त कर लिया है परन्तु अपनी भावनाओं, मन में निहित विचारों को व्यक्त करने के लिए हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग दिखाई देता है।”

- हिन्दी भाषा, साहित्य एवं भारतीय संस्कृति : वैश्विक परिदृश्य, हिन्दी भाषा का वैश्विक परिदृश्य, राजेश अग्रवाल, डॉ. डी. विद्याधर, डॉ. सुषमा देवी डॉ. डी. जयप्रदा, डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा, पृष्ठ - 109

हम देख सकते हैं कि इधर हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप भी बहुत बदल चुका है। अनेक पत्रिकाएं यद्यपि बंद भी हुईं परन्तु अनेक नई पत्रिकाओं ने नया रूप आकार लेना शुरू कर गया है। आज हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदी और हिंदीतर राज्यों का अंतर मिटता जा रहा है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का पाठक वर्ग तो संपूर्ण देश में है यहां तक कि विदेशों में भी है और उसका प्रकाशन भी देश-विदेश में हो रहा है।

डिजिटल तकनीक और बहुरंग चित्रों के प्रकाशन की सुविधा ने हिंदी पत्रकारिता जगत को बहुत परिवर्तित कर दिया है। इसी के साथ यह भी स्मरणीय है कि प्रकाशन जगत में भी वैश्वीकरण के साथ जुड़ी नई तकनीक के कारण मूलभूत क्रांति संभव हो सकी है। विभिन्न आयु और रुचियों के पाठकों के लिए हिंदी में विविध प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हो रहा है। मनोरंजन, ज्ञान, शिक्षा और परस्पर व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में उसका विस्तार हो रहा है। मोबाइल और कंप्यूटर की संचार क्रांति की चर्चा न की जाए तो बात अधूरी रह जाती है। ये ऐसे माध्यम हैं जिन्होंने दुनिया को सचमुच मनुष्य की मुट्ठी में कर दिया है। सूचना, समाचार और संवाद संप्रेषण के लिए इन्होंने हिंदी को विकल्प के रूप में विकसित करके संचार तकनीक को भी समृद्ध किया है। हिंदी को भी समृद्धतर बनाया है। इसी प्रकार इंटरनेट और वेबसाइट की सुविधा पत्र पत्रिकाओं के ही संस्करण में पूर्णता ऑनलाइन पत्र पत्रिकाएं भी शुरू कर दी है। अब हर प्रकार की जानकारी इंटरनेट पर हिंदी में प्राप्त होने लगी है। इस तरह हिंदी में बाजार और कंप्यूटर दोनों की भाषा के रूप में अपना समर्थ सिद्ध कर दिया है। भविष्य की विश्व भाषा की यही तो दो कसौटियां बताई जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ विवरण -

1. भारत का भूमंडलीकरण, संपादक अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. हिन्दी भाषा, साहित्य एवाँ भारतीय संस्कृति : वैश्विका परिदृश्य, हिन्दी भाषा का वैश्विक परिदृश्य, राजेश अग्रवाल, डॉ. डी. विद्याधर, डॉ. सुषमा देवी डॉ. डी. जयप्रदा, डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद, संस्करण - 2019.

डिजिटल दौर में हिंदी:संभावनाएं,संघर्ष और दिशा

पवन कुमारी
सहायक प्रोफेसर ,
हिन्दी विभाग,
हंसराज महिला महाविद्यालय ,जालंधर
9915511752
Pawanyadav12b@gmail.com

वर्तमान युग डिजिटल युग के रूप में जाना जाता है। यहां इंटरनेट सोशल मीडिया और तकनीकी साधनों ने हमारे जीवन को पूर्ण रूप से बदल दिया है ,वहीं इसका प्रभाव भाषा पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हिंदी जो विश्व की प्रमुख भाषाओं में से एक है इस डिजिटल क्रांति के दौर से अछूती नहीं रही। डिजिटल प्लेटफार्म ने हिंदी भाषा को वैश्विक पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई है। आज यूट्यूब, ब्लॉग वेबसाइट और सोशल मीडिया जैसे माध्यमों पर हिंदी सामग्री की भरमार है। हिंदी कंटेंट, क्रिएटर की संख्या तेजी से बढ़ रही है। ऑनलाइन शिक्षा, ई - बुक्स और डिजिटल समाचारों में हिंदी का उपयोग बढ़ा है वही गूगल माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियों हिंदी को तकनीकी रूप में सशक्त बना रही हैं। इस डिजिटल युग ने मानव जीवन के हर पहलू को गहरे रूप से प्रभावित किया है,वही भाषा भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी है। हिंदी जो भारत की सबसे व्यापक रूप में बोली और समझी जाने वाली भाषा है वह डिजिटल युग में एक अनोखी स्थिति में खड़ी है। हिंदी का इतिहास और इसकी सांस्कृतिक समृद्धि किसी परिचय की मोहताज नहीं है। प्राचीन साहित्य, काव्य, संगीत और दर्शन का एक विशाल भंडार है लेकिन डिजिटल युग में हिंदी का उपयोग बदल रहा है इंटरनेट की शुरुआत के साथ हिंदी सामग्री का प्रचार व प्रसार पहले की तुलना से अधिक व्यापक हो गया है। आज सोशल मीडिया, ब्लॉग , वेबसाइट, यूट्यूब चैनल और ऑनलाइन समाचार पत्रिकाएं हिंदी में उपलब्ध हैं जो लाखों लोगों तक पहुंच रही है यह एक सकारात्मक बदलाव है क्योंकि यह हिंदी को उन लोगों तक ले जा रहा है जो शायद पहले ही ऐसे क्षेत्र में हैं जहां हिंदी बोलने वालों की संख्या बहुत कम है, वहां स्मार्टफोन और सस्ते इंटरनेट डाटा कनेक्शन की सामग्री को बढ़ावा दिया।

डिजिटल युग में हिंदी केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक नहीं बल्कि एक जीवन प्रतियोगी माध्यम बनकर सामने आई है इस क्षेत्र में आगे सोशल मीडिया पर हिंदी की बात करे तो फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप्प , इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म हिंदी को एक नया मंच प्रदान किया है जब उपलब्धता इंग्लिश का भी उपयोग करते हैं इन सरकारी संस्थान आप हिंदी में फ्री सूचना साझा करते हैं ई-पाठ्यक्रम, ऑनलाइन वेबीनार, मुक्त विश्वविद्यालय और डिजिटल पुस्तकालय जैसे माध्यमों ने हिंदी को एक नया विस्तार प्रदान किया स्वयंम ,मूक्स ,ई –पाठशाला जैसे पोर्टल हिंदी में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। मोबाइल तकनीक के बनने के साथ-साथ हिंदी भाषा का उपयोग भी बड़ा है। स्मार्टफोन कंपनियां अब हिंदी इंटरफेस टाइपिंग की, वर्ड वाइस टाइपिंग और वाइस असिस्टेंट की सुविधा हिंदी में उपलब्ध करवा रही है, इससे डिजिटल पहुंच आसान और लोकतांत्रिक हो रही हैं। गूगल वाइस टाइपिंग, स्विफ्टकेय(swiftkey)इंडिक कीबोर्ड (indic keyboard) जैसे टूलस हिंदी की टाइपिंग को सरल बना रहे हैं।

भारत की भाषा में विविधता के बीच हिंदी एक सेतु का कार्य कर रही है। विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के बीच हिंदी एक संपर्क भाषा के रूप में सामने आई है। बिहार, उत्तर प्रदेश ,मध्य प्रदेश, राजस्थान और दिल्ली जैसे हिंदी भाषी राज्यों के साथ-साथ गैर हिंदी भाषा राज्यों में भी हिंदी कंटेंट की खपत तेजी से बढ़ रही है। यह परिवर्तन सोशल मीडिया रील्स ,शॉर्ट्स के माध्यम से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

ई –गवर्नेंस के बढ़ते हुए प्रयोग ने प्रशासनिक सेवाओं को नागरिक तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण तरीका बदला है अब अधिकांश सरकारी वेबसाइट हिंदी में भी उपलब्ध है। रेलवे, बैंकिंग, सरकारी योजनाओं, आधार पोर्टल डिजिटल इंडिया पोर्टल जैसी सुविधाओं में हिंदी विकल्पों की सुविधा दी जा रही है। इससे आम नागरिकों की भागीदारी बढ़ी है और डिजिटल समावेशन को बल मिला है। डिजिटल युग में हिंदी भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण उपकरण भी बन गई है। हिंदी की डिजिटल उपस्थिति को और अधिक मजबूत करने के लिए तकनीकी कंपनियों शिक्षण संस्थानों और आम जनता को मिलकर कार्य करना होगा। डिजिटल माध्यमों ने साहित्य अभिव्यक्ति को भी एक नया रूप दिया है ब्लॉगिंग ,ई – पुस्तक और ऑनलाइन कविता मंचों के जरिए अब लेखक सीधे पाठकों से जुड़ रहे हैं। डिजिटल मंचों ने हिंदी साहित्य को लोकप्रिय बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। नई पीढ़ी की

लेखनी में भावनाओं के साथ-साथ डिजिटल यथार्थ भी शामिल है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा में शिक्षा को बढ़ावा दिया गया है। इसके अनुरूप हिंदी माध्यम में डिजिटल शिक्षण संसाधनों की मांग और आपूर्ति दोनों में वृद्धि हुई है। यूजीसी द्वारा समर्थित MOOCs और SWAYAM पर भी हिंदी में कोर्सेज की संख्या बढ़ रही है।

डिजिटल मार्केटिंग और ई-कॉमर्स में हिंदी की भूमिका अब केवल विज्ञापन तक सीमित नहीं रह गई है बल्कि यूजर इंगेजमेंट और कस्टमर सपोर्ट ने भी हिंदी की मांग को बढ़ावा दिया है Amazon, Flipcart और Meesho जैसी कंपनियां अब ग्राहक सेवा और उत्पाद विवरण हिंदी में प्रदान कर रही है। हिंदी भाषा में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), मशीन लर्निंग, स्पीच रिकग्निशन और नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग (NLP) से जुड़े नए प्रयोग हो रहे हैं। गूगल माइक्रोसॉफ्ट और इंडियन लैंग्वेज कॉर्पोरेशन इनीशिएटिव द्वारा हिंदी को तकनीकी रूप में सक्षम बनाने के लिए मॉडल्स, अनुवाद, डिक्शनरी जैसे टूल विकसित किए जा रहे हैं। भारत में इंटरनेट उपयोग करने वालों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। हिंदी डिजिटल कॉन्टैक्ट की खपत हर वर्ष 18% की दर से बढ़ रही है। गूगल के एक आंतरिक अध्ययन से पाया गया है कि यूट्यूब पर भारत में देखे जाने वाले कुल वीडियो समय का 52% भाग हिंदी सामग्री केन्द्रित है। अमज़ोन प्राइम, नेटफ्लिक्स और हॉटस्टार जैसे ओटीटी प्लेटफॉर्म पर हिंदी ऑडियो विकल्पों की मांग में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। ग्रामीण भारत के 55% से अधिक लोग हिंदी में कंटेंट उपभोग करना पसंद करते हैं। हिंदी भाषा डिजिटल सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है और साथ ही हिंदी भाषी महिलाओं की डिजिटल भागीदारी निरंतर बढ़ रही है। यूपीएससी एसएससी, बैंकिंग, सीटेट और अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए अब हिंदी में ऑनलाइन कोर्स टेस्ट सीरीज और वीडियो व्याख्यान उपलब्ध है। टेस्ट बुक, ग्रेडअप, स्टडी आइक्यू जैसे प्लेटफॉर्म हिंदी छात्रों को डिजिटल सुविधा प्रदान कर रहे हैं। हिंदी डिजिटल मीडिया अब केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा, यह एक पूर्ण व्यावसायिक क्षेत्र बन चुका है। हिंदी न्यूज़ पोर्टल, यूट्यूब क्रिएटर, ब्लॉगर्स और पॉडकास्ट अब विज्ञापन और ब्रांड साझेदारियों से आय अर्जित कर रहे हैं। भारत में डिजिटल हिंदी मीडिया का विज्ञापन बाजार निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है।

डिजिटल युग का सबसे बड़ा बदलाव आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस है और इसमें भी हिंदी की भूमिका बढ़ रही है पहले आई टूल्स केवल अंग्रेजी तक सीमित थे लेकिन अब गूगल ट्रांसलेट, चैट जीपीटी और माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियां हिंदी को भी शामिल कर रही है। अब लोग एआई से हिंदी में

सवाल पूछ सकते हैं, निबंध लिखवा सकते हैं या पत्र तैयार कर सकते हैं। वॉइस टेक्नोलॉजी में भी हिंदी को मजबूत बनाया है आज अलेक्सा और गूगल असिस्टेंट हिंदी में बात करते हैं कोई पूछे गूगल मौसम कैसा है? तो उसे उत्तर भी हिंदी में ही मिलता है। इससे ग्रामीण और कस्बाई इलाकों के लोग भी आसानी से तकनीक का लाभ उठाने में सक्षम हो रहे हैं। हिंदी केवल भाषा ही नहीं बल्कि कारोबार का भी हिस्सा बन चुकी है। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म जैसे अमेज़ॉन और फ्लिपकार्ट में हिंदी में शॉपिंग की सुविधा शुरू कर दी है।

डिजिटल युग ने जहां हिंदी साहित्य को उत्कृष्टता प्रदान की है वही हिंदी साहित्य के लिए कई चुनौतियां भी उत्पन्न की है, जिससे हिंदी साहित्य संघर्ष कर रहा है। आज के डिजिटल युग में लाइक शेयर और फॉलोअर्स की अंधी दौड़ में कई बार साहित्य गुणवत्ता प्रभावित होती है। गंभीर एवं लोकप्रिय साहित्य का अंतर बढ़ रहा है। वर्तमान हिंदी साहित्य के लिए गुणवत्ता बनाम लोकप्रियता एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर उभरी है। डिजिटल माध्यम में रचनाओं की नकल और बिना अनुमति के सांझा करना सबसे बड़ी समस्या है, जिससे लेखन के अधिकार प्रभावित होते हैं। कॉपीराइट की समस्या एवं साहित्य चोरी की समस्या हिंदी साहित्य के लिए एक बड़ा संकट बना हुआ है। इसी के साथ-साथ डिजिटल प्लेटफॉर्म पर संपादन और आलोचना का स्तर कमजोर हो रहा है। डिजिटल क्रांति ने लेखन को अत्यंत लोकतांत्रिक बना दिया है, कोई भी व्यक्ति मोबाइल या लैपटॉप पर तुरंत कविता कहानी और लेख लिखकर प्रकाशित कर सकता है, यह सबसे बड़ी उपलब्धि है पर इसी स्वतंत्रता ने गुणवत्ता को गंभीर संकट में डाल दिया है, यह संकट भाषा, विषय शैली और साहित्यिक मानकों को प्रभाव डालता है। भाषा की शुद्धता भी सबसे बड़ी समस्या है। आज हिंगलिश संक्षिप्त भाषा और गलत वर्तनी का बढ़ता प्रयोग हिंदी की शुद्धता और सौंदर्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन रहा है। इसके साथ ही साहित्यिक संस्थाओं और पत्रिकाओं को वास्तव में हिंदी साहित्य के सामने सबसे बड़ी चुनौती है 21वीं सदी में विशेष का डिजिटल युग में स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर बढ़ते दबाव ने साहित्य की स्वायत्तता को चुनौती दी है। डिजिटल युग में हिंदी की यात्रा आसान नहीं है सबसे बड़ी समस्या हिंदी की कई बोलियां हैं, भोजपुरी, अवधी, ब्रज जैसी बोलियों का मानकीकरण मुश्किल हो जाता है। इसके अतिरिक्त कई सॉफ्टवेयर और टूल्स अभी भी अंग्रेजी को प्राथमिकता देते हैं, जिससे हिंदी का संपादन करना कठिन हो जाता है। सोशल मीडिया पर हिंगलिश का ज्यादा इस्तेमाल हो रहा है जिससे शुद्ध हिंदी कहीं ना कहीं पीछे रह जाती है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ा है अधिकांश वेबसाइट्स, सॉफ्टवेयर और एप्स

अंग्रेजी में होती हैं, जिससे हिंदी उपयोगकर्ताओं को कठिनाई होती है और उन्हें मिश्रित भाषा हिंगलिश का प्रयोग करना पड़ता है। आजकल सोशल मीडिया पर हिंदी को रोमन लिपि में लिखा जा रहा है जिसे शुद्ध हिंदी की लिपि और व्याकरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। हिंदी में उच्च गुणवत्ता वाले डिजिटल टूल्स सॉफ्टवेयर और कंटेंट अभी भी सीमित मात्रा में है। हिंदी के शब्दों की वर्तनी और शैली में एकरूपता की कमी है अलग-अलग प्लेटफार्म पर हिंदी का अलग-अलग रूप देखने को मिलता है, जिससे भ्रम की स्थिति बनी रहती है। इंटरनेट पर हिंदी में उपलब्ध सामग्री की गुणवत्ता अक्सर संतोषजनक नहीं होती। शोध, विज्ञान, तकनीक और शिक्षा से संबंधित सामग्री हिंदी में बहुत कम मिलती है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में हिंदी भाषी लोग डिजिटल तकनीक का पूरा लाभ नहीं उठा पाते, क्योंकि उन्हें तकनीकी ज्ञान और संसाधनों की कमी होती है। इसके साथ ही देवनागरी लिपि में टाइपिंग कई लोगों के लिए कठिन होती है, अलग-अलग फोंट और कीबोर्ड लेआउट भी उनके लिए एक समस्या है।

आज डिजिटल युग में हिंदी के सामने चाहे कई चुनौतियां हैं लेकिन संभावनाएं भी उतनी ही व्यापक है यदि तकनीकी विकास मानकीकरण और हिंदी में गुणवत्तापूर्ण सामग्री का ध्यान रखा जाए तो हिंदी न केवल भारत में बल्कि वैश्विक स्तर पर अपनी सशक्त पहचान बना सकती हैं। डिजिटल युग में हिंदी में यह सिद्ध कर दिया है कि यह केवल साहित्य और संस्कृति की भाषा नहीं बल्कि तकनीक और व्यापार की भी शक्ति है। सोशल मीडिया पर लोगों को जोड़ने से लेकर ब्लॉगिंग में नई सोच को जन्म देने और एआई में भविष्य की संभावनाएं बनाने तक हिंदी हर जगह पर जमी हुई है। हिंदी की सबसे बड़ी ताकत यह है कि यह लोगों को उनकी जड़ों से जोड़ती है और आदमी को तकनीक से भी जोड़ती है। डिजिटल साक्षरता और एआई तकनीक में हिंदी की पहुंच और मजबूत हो गई है, जिस कारण हिंदी दुनिया की सबसे प्रभावशाली भाषा में एक बन सकती है इस प्रकार हिंदी डिजिटल दुनिया की एक प्रभावशाली और गतिशील भाषा है जिसकी पहुंच ना केवल भाषा प्रेमियों तक है बल्कि शिक्षा, प्रशासन, व्यवसाय और संस्कृति के क्षेत्र में भी इसने अपनी उपयोगिता को सिद्ध किया है। हिंदी की इस विकास यात्रा में निरंतर नूतनता, साक्षरता और नीतिगत समर्थन आवश्यक मिलते रहे तभी हिंदी नए आयाम को छूने में सफल हो पाएंगी डिजिटल युग में हिंदी साहित्य संभावनाओं से भरा हुआ है यदि लेखक पाठक और मंच मिलकर इसकी गुणवत्ता और साहित्यिक मूल्यों को संतुलित रखें तो सत्य में हिंदी साहित्य के लिए यही योगेश्वर नियम योग सिद्ध हो सकता है आज के डिजिटल युग का हिंदी साहित्य का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि लेखन अपनी रचनात्मकता सामाजिक प्रतिबंधकता को कैसे बनाए रखना है तथा बदलती तकनीक के साथ हिंदी भाषा को कैसे आगे ले जाया जा सकता है। आज आवश्यक है कि हम हिंदी का अधिक से अधिक प्रयोग करें एवं इसके तकनीकी रूप को सशक्त बनाएं और नई पीढ़ी को इसके प्रति

जागरूक करें इस प्रकार हिंदी न केवल डिजिटल युग में प्रासंगिक होगी, बल्कि भविष्य में और अधिक प्रभावशाली एवं समृद्ध भाषा के रूप में उभर कर सामने आएंगी।

“भाषा वही जीवित रहती है जो समय के साथ चलती है
आज हिंदी डिजिटल युग में नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ रही है”

सहायक पुस्तक:-

- विद्यानिवास मिश्र, हिंदी भाषा और समाज, संस्करण: 2001, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- ललित शर्मा, डिजिटल हिंदी और भाषा का विकास, संस्करण : 2019, वाराणसी : ज्ञान मंडल प्रकाशन ।
- एम एल गुप्ता, हिंदी और नई मीडिया संस्कृति, संस्करण: 2017 , दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- राम सहाय सिंह, हिंदी भाषा-प्रौद्योगिकी: सिद्धांत और व्यवहार, संस्करण: 2020, लखनऊ : लोक भारती प्रकाशन ।

21वीं सदी का हिंदी नाटक और रंगमंच : चुनौतियाँ और संभावनाएँ

डॉ.अनुशोभा
सहायक प्रोफेसर
कन्या महाविद्यालय
जालंधर

1. नाट्य की अवधारणा : शास्त्रीय आधार

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटक को “पंचम वेद” कहा है, जिसका उद्देश्य लोक-मंगल और शिक्षा-मनोरंजन दोनों हैं।

“नाट्यं भिन्नरूपं लोकवृत्तानुकीर्तनम्” - अर्थात् नाटक लोकजीवन का अनुकरण है।

यह सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि समकालीन नाटक सामाजिक यथार्थ को मंच पर प्रस्तुत करता है।

2. आधुनिक हिंदी नाटक की बौद्धिक पृष्ठभूमि

नेमिचन्द्र जैन के अनुसार -

“रंगमंच केवल साहित्य का मंचन नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र कला-विधा है।”

इस दृष्टि से 21वीं सदी का हिंदी रंगमंच पाठ-केंद्रित न होकर प्रस्तुति-केंद्रित होता जा रहा है।

जयदेव तनेजा लिखते हैं -

“हिंदी रंगमंच का विकास साहित्यिक परम्परा से अधिक रंग-प्रयोगों के माध्यम से हुआ है।”

इससे स्पष्ट होता है कि प्रयोगधर्मिता हिंदी रंगमंच की अनिवार्य विशेषता है।

3. विमर्शधर्मी नाटक : आलोचनात्मक दृष्टि

समकालीन नाटकों में स्त्री और दलित विमर्श के संदर्भ में आलोचक मानते हैं कि हिंदी रंगमंच ने हाशिये के स्वर को मंच दिया है।

सुधा अरोड़ा के मतानुसार -

“स्त्री-विमर्श ने नाटक को निजी से सार्वजनिक अनुभव तक विस्तृत किया है।”

दलित रंगमंच पर विचार करते हुए श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ का कथन उल्लेखनीय है -

“दलित नाटक प्रतिरोध की रंगभाषा है।”

इस प्रकार नाटक सामाजिक न्याय के विमर्श का माध्यम बन गया है।

4. प्रयोगधर्मी रंगमंच : आलोचकों की दृष्टि

हबीब तनवीर ने लोक-रूपों के प्रयोग के संदर्भ में कहा था -

“लोक ही हमारी असली रंगभूमि है।”

उनका चरनदास चोर लोक और आधुनिकता के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मोहन राकेश के नाटक आधे-अधूरे को नेमिचन्द्र जैन ने

“आधुनिक मनुष्य की विखंडित चेतना का नाट्य रूप”

बताया है।

इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिंदी नाटक मनोवैज्ञानिक यथार्थ को भी मंचित करता है।

5. जन-नाट्य और सामाजिक हस्तक्षेप

सफदर हाशमी के अनुसार -

“नाटक जनता के बीच जाकर ही जीवित रहता है।”

उनकी नुक्कड़ नाट्य परम्परा ने रंगमंच को अभिजनवादी दायरे से निकालकर जन-सामान्य तक पहुँचाया। आज भी विश्वविद्यालयों और सामाजिक आंदोलनों में नुक्कड़ नाटक प्रभावी माध्यम है।

6. समकालीन चुनौतियों पर आलोचनात्मक मत

6.1 दर्शक-संकट

नेमिचन्द्र जैन ने दर्शक की भूमिका को अनिवार्य मानते हुए लिखा -

“रंगमंच दर्शक के बिना अधूरा है।”

डिजिटल युग में यही दर्शक-वर्ग पुनर्निर्माण की चुनौती बन गया है।

6.2 आर्थिक संकट

जयदेव तनेजा के अनुसार -

“हिंदी रंगमंच की सबसे बड़ी समस्या उसकी आर्थिक संरचना है।”

6.3 संस्थागत अभाव

रंगमंच के विकास के लिए संस्थागत सहयोग आवश्यक है, अन्यथा रंगकर्म व्यक्तिगत प्रयासों तक सीमित रह जाता है।

7. संभावनाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि

7.1 डिजिटल रंगमंच

आलोचकों का मत है कि डिजिटल माध्यम रंगमंच का विकल्प नहीं, बल्कि विस्तार है। इससे अभिलेखन (documentation) और वैश्विक पहुँच संभव हुई है।

7.2 शैक्षणिक रंगमंच

विश्वविद्यालयों में रंगमंच को पाठ्यक्रम से जोड़ने पर “दर्शक और कलाकार - दोनों का निर्माण” संभव है।

7.3 लोक-रूपों का पुनर्पाठ

हबीब तनवीर की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए लोक-रंगधर्मिता हिंदी रंगमंच की सांस्कृतिक जड़ों को सुदृढ़ कर सकती है।

8. समन्वित निष्कर्ष

आलोचनात्मक मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का हिंदी नाटक बहुस्तरीय संक्रमण से गुजर रहा है। यह साहित्य, समाज, राजनीति और तकनीक - सभी से संवाद स्थापित कर रहा है। चुनौतियाँ संरचनात्मक हैं, परंतु संभावनाएँ सृजनात्मक और व्यापक हैं।

नाटक की सामूहिकता, प्रत्यक्षता और जीवंत संवाद की क्षमता उसे अन्य माध्यमों से विशिष्ट बनाती है।

संदर्भ सूची (उद्धरण सहित)

भरतमुनि - नाट्यशास्त्र

नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन

जयदेव तनेजा - हिंदी रंगमंच का इतिहास

मोहन राकेश - आधे-अधूरे

हबीब तनवीर - चरनदास चोर

सफदर हाशमी - जन-नाट्य लेख एवं वक्तव्य

समकालीन हिंदी नाट्य-विमर्श संबंधी शोध-पत्र

सूरदास के काव्य की मूल संवेदना

डॉ. दीप्ति धीर

असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग,

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर (पंजाब)

सूरदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल की सगुण काव्यधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। हिंदी के प्रमुख कृष्ण भक्तों में उनका साहित्य अत्यंत उच्च और महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं, प्रेम, करुणा और वात्सल्य भाव का अत्यंत सजीव एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया। सूरदास का काव्य भक्ति और प्रेम भावना का अद्भुत संगम है। उन्होंने समाज में व्याप्त जाति-पाति के भेदभाव का विरोध करते हुए सभी को समान रूप से ईश्वर भक्ति का संदेश दिया। उनका प्रमुख ग्रंथ सूरसागर हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जिसमें कृष्ण की लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। उनके काव्य का मूल संवेदना इस प्रकार है :-

भक्ति भावना की प्रधानता - सूरदास के काव्य में सगुण भक्ति का सुंदर चित्रण मिलता है। उन्होंने भगवान को श्रीकृष्ण रूप में स्वीकार किया है। वह कृष्ण के सच्चे भक्त थे। उनकी भक्ति में निस्वार्थ और सच्चा प्रेम दिखाई देता है, जो भक्ति का मूल तत्त्व है। सूरदास के भक्ति आधारित पद व्यक्ति को सहज रूप से ईश्वर से जोड़ते हैं। वह कहते हैं कि मेरा मन प्रभु को छोड़ अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं पाता है अर्थात् प्रभु चरणों में ही मुझे आनंद और परम सुख की प्राप्ति होती है।

“मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।

जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी, पुनि जहाज पै आवै”ⁱ

वात्सल्य भाव- सूरदास वात्सल्य रस के सबसे प्रसिद्ध कवि हैं। मुंशीराम ने तो सूरदास को ही वात्सल्य रस का नियामक माना है। उनके शब्दों में - “सूरदास ने ही नवीन रस के रूप में वात्सल्य रस की सृष्टि की थी। उनके पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों में यह विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती है।”ⁱⁱ ऐसी ही बात रामचन्द्र शुक्ल ने भी कही है, “वात्सल्य के क्षेत्र का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने

अपनी बंद आंखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं, वे इसका कोना-कोना झांक आए हैं।”ⁱⁱⁱ इससे स्पष्ट होता है कि सूरदास वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं।

सूरदास ने यशोदा-कृष्ण प्रसंग में वात्सल्य-वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। यशोदा कृष्ण से बहुत प्रेम करती है। पालने में अपने पुत्र को देखकर वह बलिहारी जाती है। वह उसके रूप-सौन्दर्य पर न्यौछावर होते हुए उसको दुलारती है।

“जसोदा हरि पालनै झुलावै
हलरावै दुलरावै मल्हावै, जोइ - सोइ कछु गावै।”^{iv}

गुरु का महत्त्व – सूरदास ने गुरु को भक्ति मार्ग का मार्गदर्शक माना गया है, जो अज्ञानता के को दूर कर शिष्य को ज्ञान का रास्ता दिखते हैं। गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु ही भक्त को ज्ञान रूपी दीपक देकर उसे सही मार्ग दिखाकर ईश्वर तक पहुँचने में सहायता करता है और उसे इस संसार-सागर से डूबने से बचाता है। गुरु की कृपा से ही मनुष्य में भक्ति भावना जागृत होती है। सूरदास अपने काव्य में गुरु की महिमा का गुणगान करते हुए कहते हैं-

“गुरु बिनु ऐसी कौन करें ?

माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै ।”^v

सत्संग का महत्त्व -

सत्संग (अच्छे लोगों और संतों की संगति) को उन्होंने जीवन सुधारने का श्रेष्ठ साधन माना है, जिससे मनुष्य भक्ति मार्ग पर आगे बढ़ता है। सूरदास कहते हैं हमें ऐसे लोगों का साथ छोड़ देना चाहिए जिनके साथ रहकर बुरे विचार आए और भगवान की भक्ति में बाधा पड़ती हो। दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्तियों का परित्याग कर देना ही अच्छा है। क्यों कि उससे कुछ लाभ होने का नहीं है। वह कहते हैं-

तजो मन, हरि बिमुखन कौ संग ।

जिनकै संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग ।

ईश्वरीय कृपा का चित्रण- सूरदास मानते हैं कि ईश्वर सदैव ही अपने भक्तों पर कृपा करते हैं। उन्होंने अपने पदों में बार-बार स्पष्ट किया है कि कृष्ण गरीबों, अनाथों और दीनों के प्रति दयालु हैं और उन पर अपनी दया दृष्टि करते हैं। जब भी भक्त पर मुसीबत आई है तभी भगवान ने उसका

निवारण कर अपने भक्त का उद्धार किया है। उनका यह संदेश है कि भगवान शरण में आने वालों पर सदा ही कृपा करते हैं:-

“सरन गए को को न उबारयो।

जब जब भीर परी संतति कौ, चक्र सुदरसन तहाँ संभारयो ।”^{vi}

जात-पात का विरोध - सूरदास ने यह संदेश दिया कि सच्ची भक्ति में ऊँच-नीच और वर्गभेद का कोई स्थान नहीं होता बल्कि प्रेम और समर्पण द्वारा भक्त ईश्वर की कृपा को प्राप्त कर सकते हैं। उनका काव्य समाज को समरसता, समानता और भाईचारे के भाव को अपनाने की प्रेरणा देता है। सूरदास ने जाति, कुल, वंश और सामाजिक वर्ग को कोई महत्व नहीं दिया है। उनके अनुसार निर्धन व्यक्ति हो या संपन्न ईश्वर की शरण में आने वाला प्रत्येक भक्त समान होता है -

“जाति, गोत कुल नाम, गनत नहिं, रंक होइ कै रानों ।”^{vii}

“कहा सुदामा कै धन हौ ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक ।”^{viii}

सूर साहित्य ऊँच -नीच और भेदभाव की भावना का खण्डन करता है और सामाजिक समानता का संदेश देता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूरदास का स्थान कृष्ण भक्ति के सर्वोच्च कवि के रूप में है। उनकी रचनाओं में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गहरी आस्था और समर्पण झलकता है। उन्होंने वात्सल्य भाव के माध्यम से यशोदा और बाल कृष्ण के संबंध को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उनकी मूल संवेदना गहन प्रेम, भक्ति और मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम उजागर हुई है। वह न केवल एक महान भक्त कवि थे, बल्कि उन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अतुलनीय योगदान दिया है। उनका स्थान भक्ति काल में अत्यंत उच्च, आदरणीय और प्रेरणादायक है, जो सदैव अमर रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा(सं.), सूरसागर सार, साहित्य भवन प्रो. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1668, पृष्ठ - 23
2. मुंशीराम, सुर-सौरभ, पृ-230
3. रामचन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, पृ-73
4. सूरदास, सूरसागर, पद-276

5. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा(सं.), सूरसागर सार, साहित्य भवन प्रो. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1668, पृष्ठ - 20
6. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा(सं.), सूरसागर सार, साहित्य भवन प्रो. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1668, पृष्ठ - 18
7. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा(सं.), सूरसागर सार, साहित्य भवन प्रो. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1668, पृष्ठ - 18
8. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा(सं.), सूरसागर सार, साहित्य भवन प्रो. लिमिटेड, इलाहाबाद, 1668, पृष्ठ - 19

मुंशी प्रेमचन्द का जीवन-दर्शन

श्रीमती अनुराधा ठाकुर

प्रवक्ता

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर

प्रेमचन्द जी हिन्दी साहित्य जगत में महान उपन्यासकार सम्राट के रूप में विख्यात हैं एवं इसके साथ-साथ वह सुप्रसिद्ध कहानीकार भी रहे हैं। प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के अग्रणी लेखकों में से एक हैं। प्रेमचन्द सच्चे अर्थों में एक महान साहित्यकार थे जिन्होंने कलम का सिपाही बनकर देश की सेवा की थी। वे अपने युग के युगद्रष्टा थे और पथ प्रदर्शक भी थे। उन्होंने पराधीन भारत में रहकर एक ओर तो भारतीय स्वाधीनता में अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से जनता में जागृति प्रदान की तो दूसरी ओर भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों एवं समस्याओं को रेखांकित करके उचित समाधान भी प्रस्तुत किया।

प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास एवं कहानियों में यथार्थवाद के तत्वों का परिचय दिया। मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी कथा लेखन में एक सम्राट लेखक के रूप में जाने जाते हैं। हिन्दी कथा-साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान करने का श्रेय इन्हें प्राप्त हुआ। इसलिए हिन्दी कथा-विकास में प्रेमचन्द युग का अपना महत्व है। हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में प्रेमचन्द के कथा-लेखन की विशेष भूमिका रही है। उन्होंने अपने जीवन में कई कटु अनुभवों को देखा तथा भारतीय जीवन की विषमताओं को अपनी आंखों से देखा एवं हृदय से अनुभव किया था। मानव जीवन के विषय में उनकी अपनी निजी धारणाएं थी। वही धारणाएं उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती हैं। प्रेमचन्द के सम्पूर्ण कथा-साहित्य की विशेषता यह है कि इन्होंने आम आदमी के दुःख दर्द और उनकी अन्य समस्याओं को विस्तार से प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द जी ने स्वयं अभाव का जीवन व्यतीत किया था और अपने आसपास आम आदमी की बेबसी को एक भावुक कथा-लेखक के रूप में समझा था। इसलिए प्रेमचन्द का कथा-साहित्य आम आदमी शहर और गांव के जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है।

किसी साहित्यकार की साहित्य दृष्टि उसके जीवन-दर्शन से गहराई से प्रभावित होती है। जीवन-दर्शन वह दृष्टिकोण है जिसे साहित्यकार अपने पारिवारिक संस्कारों, शिक्षा, संस्कृति और परिवेश के आधार पर विकसित करने के साथ-साथ उसके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं, अनुभव और चिंतन भी इसी दृष्टिकोण को आधार देते हैं। अतः प्रेमचंद के जीवन-दर्शन के विधायक तत्वों पर विचार प्रस्तुत करने से पूर्व उनकी जीवन सम्बन्धी धारणाओं तथा मान्यताओं को एक शब्द में उनके जीवन-दर्शन पर चर्चा करना उपयोगी होगा। मुंशी प्रेमचंद का जीवन-दर्शन मुख्य रूप से मानवतावाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित था। वे आम जनता (मानव) के दुःखों, गरीबी और शोषण के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे एवं साहित्य को समाज सुधार का सशक्त माध्यम मानते थे। उनका दर्शन दिखावे से दूर सादगी, कर्मठता और ईमानदारी पर आधारित था। उनके जीवन दर्शन के प्रमुख स्तम्भ मानवतावाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और गांधीवादी विचारधारा और सामाजिक सुधार, सच्चा प्रेम और आत्मिक समर्पण, सादा जीवन, उच्च विचार एवं नारी सशक्तिकरण रहे हैं।

प्रेमचंद जी जीवन के प्रति मानवीय दृष्टिकोण में विश्वास रखते थे अर्थात् वे मानवतावाद के पक्षधर थे। प्रेमचंद जी मानव-जीवन को अत्यंत कोमल मानते हैं। उनका मानना था कि जब तक इस धरती पर मानवतावाद नहीं होगा तब तक इस वसुधा के जहर या विषैलेपन को मिटाया नहीं जा सकता। प्रेमचंद जी की विचारधारा थी कि चाहे कोई कितना भी धनवान हो, उसके पास सुख के साधन कितने भी हो, उनको मानवता के लक्ष्य को प्राप्त करना अति आवश्यक है तभी वे अपने जीवन को सफल व सार्थक मान सकते हैं। प्रेमचंद भारत के ऐसे भविष्य की कामना करते थे जहां सभी स्वयं को पहचाने एवं उनमें मानव प्रेम स्वयं जागृत हो जाए और धरती खुशहाल हो और समाज विकसित हो। उन्होंने समाज में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को मानवतावाद के प्रति जागरूक करते हुए जीवन की सारहीनता की बात को भी अन्यत्र दोहराया है कि जीवन से ज्यादा आसान भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह दीपक की भांति क्षणभंगुर नहीं है जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है। पानी के बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सारों नहीं। सांस का भरोसा ही क्या? और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं? मानो हम अमर हैं।

मानव जीवन की असारता का उदाहरण उन्होंने प्रतिज्ञा उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द जी ने प्रस्तुत किया है। पं. वसंत कुमार कितने खुशी-खुशी गंगास्नान को जाते हैं, वहां नदी में तैरता हुआ सुंदर फूल देखकर उनका मन मचल जाता है और उसे पकड़ने के लिए पानी में आगे बढ़ जाते हैं। ये सब तो एक खेल मात्र था, पर परिणाम पर जब दृष्टि पहुँचती है तो स्पष्ट ही जीवन निस्सारता दिखाई देती है क्योंकि दूसरे ही क्षण खेल का वह भयानक दृश्य सामने उपस्थित होता है और वे नदी के भंवर में फँस जाने के कारण पं. वसंत कुमार इस जीवन को क्षण में ही सदा के लिए छोड़कर चल देते हैं। अतः जीवन की एक घटना, एक व्यंग्य, एक कठोर शब्द कभी-कभी एक नवीन मोड़ दे देते हैं। प्रेमचन्द इस तथ्य को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं - कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनाएं हो जाती हैं जो क्षण मात्र में मनुष्य के जीवन को परिवर्तित कर देती हैं।

प्रेमचन्द की दृष्टि में जीवन का लक्ष्य खाना-पीना और कुछ धन-संचय करके मर जाना नहीं है। उनके जीवन का उद्देश्य कर्म है। उन्होंने इस सिद्धांत को आदर्श पात्र अमरकांत के माध्यम से प्रस्तुत किया है कि सिर्फ रुपया कमाना जीवन का आदर्श नहीं है। मनुष्यता को ऊपर उठाना और मनुष्य के मन में ऊंचा विचार पैदा करना भी उसका फर्ज है। अगर यह नहीं है तो आदमी और पशु दोनों समान हैं।

प्रेमचन्द का ईश्वर के प्रति ऐसा विश्वास न था जो भारत में पर्याप्त समय में व्याप्त है कि ईश्वर सब का भाग्य निर्माता है। इसके बिना पत्ता भी नहीं हिलता जो वह चाहता है प्रत्येक जीव वही करता है। उन्होंने ईश्वर के नाम पर होने वाले अत्याचार व अनाचार के विरुद्ध निरंतर आवाज उठाई है। उनका वह स्वर उनकी अनेक रचनाओं अर्थात् कहानियों एवं उपन्यासों में विद्यमान है। प्रेमचन्द इस बात के भी पक्ष में नहीं थे कि भगवान भरोसे सब कुछ छोड़ दिया जाए। उनकी धारणा थी कि आपत्ति आने पर, अवसर आने पर किसी भी स्थिति में बुद्धि व बल से सोचना चाहिए। सब कुछ ईश्वर भरोसे छोड़ना उचित नहीं होगा। उन्होंने 'गोदान' में प्रोफेसर मेहता के माध्यम से कहा है कि उनका ख्याल था कि मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने आप को महान बना लिया है कि हर एक काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। प्रेमचन्द जी का मानना था कि भोग-विलास और वासना प्रेम मानव जीवन की उन्नति के मार्ग में सबसे बड़े बाधक हैं। प्रेमचन्द जी ने अन्य भारतीय विचारकों की भांति इसका कभी भी समर्थन नहीं किया है। यह माया है जो हमें मोह में फँसा कर हमारा जीवन नष्ट कर देती है। हमारा उद्धार इनसे नहीं बल्कि अपने सुकर्म से हो सकता है और वह सुकर्म है सेवा और त्याग के मार्ग को अपनाकर जनहित के लिए कर्म करना। प्रेमचन्द के वे सभी

पात्र-सुमन, ज्ञानशंकर, मुंशी तोताराम, सेठ धनीराम, पूंजीपति खन्ना इत्यादि-जो भोगासक्ति से पीड़ित हैं, जीवन में अपनी भोग लालसा पर पश्चाताप प्रकट करते हैं, सुमन एक ऐसी पात्र है जो इस भोग लालसा के दुष्परिणाम को देखकर तुरंत ही अपना स्वभाव और कर्म बदलकर सेवा के मार्ग

को अपना लेती है। प्रेमचन्द जी सेवा कार्य को निःस्वार्थ भाव से करने में ही सार्थक मानते हैं। यदि इसमें स्वार्थ का लेशमात्र भी समावेश हो गया तो वह समूचा का समूचा कार्य निरर्थक हो जाता है। सार्वजनिक सेवा को श्रेष्ठ मानकर चलने वाले व्यक्ति को प्रेमचन्द जी संदेश देते हैं कि सार्वजनिक काम करने के लिए कहीं भी क्षेत्र की कमी नहीं, केवल मन में निःस्वार्थ सेवा का भाव होना चाहिए किन्तु जहां प्रेमचन्द जी सार्वजनिक सेवा को महत्व देते हैं, वहीं उन्होंने समाज सेवा के साथ ही परिवार सेवा पर भी विशेष बल दिया है। उनके मतानुसार - जो अपने परिवार की सेवा न कर सका, वह जाति की सेवा कभी कर ही नहीं सकता।

प्रेमचन्द जी चाहते थे कि मानव को अपने स्वाभाविक रूप में रहना चाहिए। वे प्राकृतिक जीवन जीने के पक्ष में थे, जिसका अर्थ है स्वाभाविक जीवन की वृत्ति या प्रवृत्ति। धर्म, ज्ञान, स्वर्ग आदि के चक्कर में पड़ना व्यर्थ है। वे दिखावटीपन व बनावटीपन में विश्वास नहीं रखते थे। वे न किसी मजहब में विश्वास रखते थे और न पूजा-पाठ में श्रद्धा। उन्होंने धर्म का ऐसा रूप देखा था जहां पाखंड ही पाखंड था। वे ऐसे निरर्थक धर्म के पक्ष में नहीं थे। मानव जीवन में सेवा, त्याग, ममता व सत्य ही धर्म हो सकता है। जो मानव के आचरण में होना आवश्यक है। प्रेमचन्द की कहानियों एवं उपन्यासों में यथार्थ और आदर्श का संगम, सरलता, उनकी भाषा में दिखाई देता है। जिसने कहानियों के जीवन के समीप ला खड़ा किया। कहा जाता है कि प्रेमचन्द की कहानियां अपने आसपास के जीवन से जुड़ी हुई हैं। वे ग्रामीण जीवन से जुड़े हुए थे। अतः उनकी कहानियों का विषय गांव के जीवन से निःसृत है परंतु उनकी अधिकतर कहानियां सत्याग्रह आंदोलन, जमींदारों, साहूकारों एवं उच्च पदाधिकारियों की समस्याओं और परिवेश की उपज हैं।

प्रेमचन्द प्रेम को मांसल आसक्ति या कामुकता नहीं मानते। जहाँ तक नर नारी के प्रेम का प्रश्न है। प्रेमचन्द दांपत्य प्रेम या वैवाहिक प्रेम को ही सच्चा प्रेम मानते थे। वे तलाक आदि के समर्थक नहीं थे। प्रेमचन्द प्रेम का अर्थ भोग नहीं मानते थे बल्कि जीवन का विकास और विस्तार मानते थे।

जिसके माध्यम से मानव सेवा का धर्म जागृत होता है। वे नारी को भोग की वस्तु नहीं समझते थे, उसकी चरम सीमा मातृत्व है। प्रेमचन्द प्रेम को देह की नहीं, आत्मा की वस्तु मानते हैं। प्रेमचन्द ने कहानी के विषय में कहा है कि कहानी एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। प्रेमचन्द जी ने कहानी को जीवन का अंग माना है।

प्रेमचन्द का मानना है कि मनुष्य के लिए अपने जीवनादर्श एवं चरम लक्ष्य पर पहुँचने के लिए जहाँ सेवा, त्याग, निष्काम कर्म के प्रति लगन, आचरण के प्रति दृढ़ता एवं कर्मठता आवश्यक है

वहीं उसको जीवन में स्वावलम्बी होना भी सर्वथा अपेक्षित है। इसी दृष्टि को अपनाने के कारण प्रेमचन्द के समस्त आदर्श पात्रों का जीवन सादा ही है। ऐसा जीवन प्रेमचन्द को पसन्द था क्योंकि आडम्बरपूर्ण एवं शानदार जीवन व्यतीत करने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है और इसकी पूर्ति के अनेक प्रपंच करने पड़ते हैं जो नैतिकता के मानदण्ड पर सत् नहीं कहे जा सकते। प्रेमचन्द जी इनसे दूर रहने और सादा जीवन व्यतीत करने की सलाह देते हैं। ऐसा प्रस्तावित सादा जीवन के दो महत्वपूर्ण चित्र उनके 'प्रेमाश्रम' एवं 'गबन' उपन्यास में देखने को मिलता है।

प्रेमचन्द जी नारी को न तो अत्यंत प्राचीन परंपराओं के अनुसार चारदीवारी में रहकर पुरुष का खिलौना मात्र न बनकर जीने वाली मानते थे और ना ही पश्चिमी सभ्यता के अनुसार घर से बाहर रहकर स्वच्छंद आचरण करने वाली स्वीकार करते थे। उनकी धारणा थी कि नारी ही संसार का सृजन करती है और उसका पालन करती है। पालन पोषण करने का दायित्व उसका महत्वपूर्ण कर्तव्य है। प्रेमचन्द नारी शिक्षा के समर्थक थे लेकिन पश्चिमी शिक्षा के प्रभावों के विरोधी थे।

प्रेमचन्द जी आदर्शोन्मुखी, यथार्थवादी विचारधारा के समर्थक थे। उनका लेखन यथार्थवादी था। वे समाज में फैले भेदभाव, असमानता, भ्रष्टाचार और गरीबी के खिलाफ थे। उनके लेखन का उद्देश्य समाज में सुधार और जागरूकता लाना था। उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन के वास्तविक पहलुओं को उजागर किया और भारतीय समाज धारा को बदलने के लिए कलम का उपयोग किया।

प्रेमचन्द जी का जीवन दर्शन एक नई विचारधारा को लेकर प्रस्तुत हुआ है। वह ईश्वर, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य आदि में विश्वास नहीं रखते थे। बल्कि बुद्धिवाद के समर्थक थे। वे चाहते थे कि व्यक्ति को जीवन के सभी विधान परमात्मा पर नहीं छोड़ देने चाहिए बल्कि बुद्धिपूर्वक विचार करके अपने कर्तव्य को निभाना चाहिए। प्रेमचन्द जी के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार करते समय हमारे सामने यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि वे जीवन को नकली व बनावटी ढंग से नहीं बल्कि प्राकृतिक रूप से व्यतीत करने के समर्थक हैं। वे जीवन को एक सामान्य व्यक्ति के रूप में जीते हुए देखना चाहते हैं। इस प्रकार से प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जीवन के प्रति

अपनी विचारधारा प्रस्तुत की थी। वह आज के संदर्भ में भी अत्यंत उपयोगी है। उनका जीवन-दर्शन उनके साहित्य में पूरे तरह से परिलक्षित होता है। उन्होंने जीवन को सत्य और वास्तविकता की कसौटी पर परखा है। उनका जीवन दर्शन उनके साहित्यिक कार्यों का आधार था। प्रेमचन्द का जीवन दर्शन आज भी प्रासंगिक है। उनका साहित्य हमें यथार्थ को स्वीकार करते हुए बेहतर समाज के निर्माण के लिए आदर्शों का पालन करने की सीख देता है।

'गांधी जी, आई हैव नो होमलैंड'

गांधी और अंबेडकर :दलित चेतना के परिप्रेक्ष्य में

डा चमकौर सिंह

सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग

ए एस कॉलेज फॉर वुमेन ,खन्ना ,पंजाब

दलित होने के नाते, जब इन शब्दों को कानों में सुनाई देता हूं, कि हजारों साल दलितों को अछूत समझा कर ,एक इंसान को दूसरे इंसान द्वारा जानवरों की तरह भोगा गया, तो आज सोचता हूं कि क्या मेरे पूर्वजों ने सच में ऐसा नरकीय जीवन भोगा है? आज हम खुली फिज़ाओं में आजादी से, समानता से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त किए जीवन का भोग कर रहे हैं..इसके पीछे हजारों वर्षों से सामाजिक न्या की लड़ाई लड़ते उन गुरुओं, पीर पैगंबरों और महापुरुषों के संघर्ष की गाथा है जिस से हमें आज एक हद तक सम्मानपूर्वक जीवन जीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। भारतीय जनमानस के संदर्भ में आज भी यह प्रश्न खड़ा है कि मैं एक दलित, पंजाब में बैठ कर समस्त भारत के दलितों के सामाजिक जीवन की प्रतिनिधिता कर सकता हूं? जो मेरी सामाजिक दशा है , क्या वो सभी की है? जो मुझे सामाजिक अधिकार और मान्यता प्राप्त है क्या वो सभी को है? शायद नहीं।

आज भी दलितों को घोड़ी पर चढ़ने का श्राप मिलते देखा है, आज भी मूंछों को ताव देना सिर्फ स्वर्णों के हिस्से आता है,और दलितों की मूंछें काट, पिटाई होती देखी है, शादियों में दलितों के लिए अलग बर्तन और अलग बिठाकर खाना खिलाते हुए देखा है। फिर मैं कैसे कह सकता हूं के मैं सभी का प्रतिनिधित्व कर सकता हूं?

मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैं उस धरती के टुकड़े का वासी हूं, यहां गुरु नानक, कबीर, रैदास, गुरु तेग बहादुर जी, गुरु गोबिंद सिंह, बाबा बन्दा सिंह बहादुर, महाराजा रंजीत सिंह, लाला लाजपत राय, भगत सिंह, करतार सिंह सराभा जैसे महान पुरुषों की शिक्षाओं का समाज पर प्रभाव पड़ा और समाज में समानता बनाने में बहुत हद तक सफल भी हुए। पंजाब की फिज़ाओं को गुरु नानक की वाणी और फलसफे ने यहां तक प्रभावित किया कि गुरु नानक को मानने वाला जातिवाद से प्रभावित हो ही नहीं सकता और उससे भी बड़ी बात, गुरु नानक किसी एक समुदाय के प्रतिनिधि भी नहीं हैं, पंजाब, भारत और विश्व के सभी जन वो चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान हों, चाहे ईसाई हों, चाहे सिख... सभी उनको अपना मानते हैं और सभी उनकी वाणी को भी मानते हैं, शायद इसी लिए विश्व के किसी भी कोने में, जहां भी पंजाबी रहते हैं वहां आपको जातिवादी सोच दिखाई नहीं देगी.. समाज को, गुरु नानक और सिख धर्म की यह सबसे बड़ी देन है। इसी लिए दलित समुदाय के मॉडर्न नायक और फ़रिश्ते बाबा साहब डाक्टर भीम राव आंबेडकर भी सिख धर्म से प्रभावित हुए और हिंदू धर्म को छोड़ सिख धर्म को अपनाने की ओर चले। "The interest in Sikhism continued for some time. Ambedkar developed associations with activists at the Sikh Mission and a Khalsa College was planned in Bombay."¹

आधुनिक युग में दलितों के मसीहा बाबा साहब आंबेडकर को माना जाता है और वो हैं भी.. लेकिन समकालीन समाज सुधारकों में महात्मा गांधी एक ऐसे महा पुरुष हुए हैं जो, अपने-आप को भी दलितों के सब से बड़े खैर- ख्वाह मानते हैं। इसी लिए गांधी आंबेडकर को कहते भी हैं, के ' मैं तब से दलितों के उद्धार के लिए काम कर रहा हूं, जब तुम पैदा भी नहीं हुए थे ' आंबेडकर और गांधी में परस्पर हमेशा वैचारिक मतभेद रहा। प्रश्न यही खड़ा होता है कि गांधी और आंबेडकर में से, दलितों का सबसे बड़ा नेता या मसीहा कौन था। इस प्रश्न का संदर्भ हम प्रेमचंद की कहानी ' कफ़न ' के प्रकाशन के बाद पैदा हुए विवाद से भी समझ सकते हैं.. कि क्या प्रेमचंद स्वर्ण होकर दलितों की समस्याओं को समझ सकते हैं या नहीं? इसी तरह गांधी स्वर्ण जाती से होकर , दलित आंबेडकर से बड़े दलितों के मसीहा हो सकते हैं या नहीं।

इस प्रश्न का उत्तर इस मर्म में छुपा है कि गांधी दलितों के बीच जाने के लिए सूट बूट उतारकर, धोती और नंगे बदन होते हैं और आंबेडकर नंगा बदन छोड़कर सूट बूट पहनते हैं। गांधी अपने आप को स्वर्ण से दलित बनाते हैं और आंबेडकर अपने आप को अछूत से स्वर्णों के समकक्ष

खड़ा करते हैं। क्या जनता उसको मसीहा मानेगी, जो उज्ज्वल भविष्य के सपने दिखाता है या उसको मानेगी जो उनके स्तर पर आकर उनके दुखों को बांटने की कोशिश करता है। इसी लिए भारत ने यदि गांधी को 'बापू' नाम से अलंकृत किया तो दलितों ने आंबेडकर को 'बाबा साहब' नाम से अलंकृत किया। "if Gandhi was Bapu, the 'Father' of society in which he tried to inject equality while maintaining the 'Hindu' framework, Ambedkar was baba to his people's and great liberator from that framework ."2

डॉ. भीमराव आंबेडकर और महात्मा गांधी, भारतीय समाज के दो महत्वपूर्ण और प्रभावशाली नेता थे। दोनों ने भारतीय समाज में सुधार लाने की कोशिश की, लेकिन उनके दृष्टिकोण और उपायों में काफी अंतर था। आंबेडकर को "दलितों के मसीहा" के रूप में देखा जाता है, जबकि गांधीजी ने भी दलितों के अधिकारों की बात की, लेकिन उनका दृष्टिकोण अलग था।

"Gandhiji, I have no homeland." Gandhi replied that from his reports, 'I know you are a person of sterling worth.' Ambedkar retorted, 'How can I call this land my own homeland and this religion my own wherein we are treated worse than cats and dogs, wherein we cannot get water to drink?'3

डॉ. भीमराव आंबेडकर और महात्मा गांधी दोनों का जीवन भारतीय समाज के निम्न वर्गों, विशेष रूप से दलितों, के उत्थान के लिए समर्पित रहा। गांधीजी ने दलितों को "हरिजनों" के रूप में संदर्भित किया और उनका मानना था कि दलितों को समाज में सम्मान देने के लिए उन्हें ऊँची जातियों से मेल-जोल और सहायता चाहिए। गांधी का उद्देश्य उन्हें मुख्यधारा में शामिल करना था। वहीं, आंबेडकर ने दलितों के लिए स्वतंत्रता, समानता, और सम्मान को प्राथमिकता दी। उनका मानना था कि दलितों को हिन्दू धर्म से बाहर आकर अपने अधिकारों का संघर्ष करना चाहिए।

गांधीजी के विचारों में समाज में असमानता के खिलाफ एक संघर्ष था, लेकिन उनका तरीका अहिंसा और समाज में सुधार के माध्यम से था। गांधीजी का मानना था कि दलितों को उनके अधिकारों से अधिक "मानवीय गरिमा" की आवश्यकता है। गांधी ने दलितों के लिए सामाजिक समानता की वकालत की, लेकिन वे हिन्दू धर्म के भीतर सुधारों की बजाय हिन्दू समाज को ही सुधारने पर जोर देते थे।

गांधीजी का मानना था कि हिन्दू धर्म में सुधार करके ही भारतीय समाज में असमानता को समाप्त किया जा सकता है। उनका उद्देश्य दलितों को हिन्दू धर्म में ही सम्मानित स्थान दिलाना था। इसके लिए उन्होंने "हरिजनों के उत्थान" की बात की। वे मानते थे कि अगर दलितों को शिक्षा, रोजगार और समान अधिकार मिलें तो वे समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

"Gandhi was thus a Hindu nationalist in his own way, one who saw being a Hindu as a crucial national feature. It pervaded his praxis, his politics, his defence of an idealized Varnashrama Dharma, his evocation of 'Ram Raj' as the ideal India. Gandhi could not separate his political leadership from his understanding of himself as a Hindu."4

बाबा साहब भीम राउ आंबेडकर का दृष्टिकोण गांधीजी से बिल्कुल भिन्न था। आंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि हिन्दू धर्म और भारतीय जातिवाद प्रणाली, दलितों के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती। उनका मानना था कि हिन्दू धर्म के भीतर सुधार संभव नहीं है क्योंकि यह धर्म ही जातिवाद को बढ़ावा देता है। "he proposed a resolution for conversion before an enthusiastic crowd of 10,000, and declared, I was born a Hindu and have suffered the consequences of untouchability. I will not die a Hindu. Strikingly, Gandhiji responded two days later through a press statement. He called Ambedkar's rejection of Hinduism 'unbelievable... especially when untouchability is on its last legs... Religion is not like a house or cloak which can be changed at will.(Gandhi 1973, 62:376)."5

आंबेडकर ने दलितों को हिन्दू धर्म से बाहर जाने और बौद्ध धर्म की ओर रुख करने का सुझाव दिया। उन्होंने 1956 में बौद्ध धर्म को अपनाया और अपने लाखों अनुयायियों को भी बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। यह कदम भारतीय समाज में एक बड़े परिवर्तन का संकेत था और इसे दलित समुदाय की धार्मिक स्वतंत्रता का प्रतीक माना गया।

गांधी और आंबेडकर के बीच एक बड़ा टकराव 1932 में हुआ, जब गांधीजी ने पूना पैक्ट के तहत दलितों के लिए अलग निर्वाचनी प्रतिनिधित्व की व्यवस्था का विरोध किया। गांधीजी का मानना था कि अलग निर्वाचनी प्रतिनिधित्व से हिन्दू समाज में और अधिक विभाजन होगा। इसके

विपरीत, आंबेडकर ने दलितों के लिए अलग प्रतिनिधित्व की वकालत की, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि केवल इस तरह से ही दलितों को उनके अधिकार मिल सकते थे।

गांधीजी ने इस मुद्दे पर एक अनशन भी किया, ताकि दलितों के लिए अलग निर्वाचनी प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को रोका जा सके। अंततः, पूना पैक्ट के तहत एक समझौता हुआ, जिसमें दलितों को सामान्य निर्वाचनी प्रतिनिधित्व के साथ-साथ कुछ आरक्षित सीटें भी दी गईं। इस समझौते में आंबेडकर और गांधी के दृष्टिकोण का एक संतुलन पाया गया, लेकिन इस टकराव ने भारतीय समाज में दलितों के अधिकारों और उनके सामाजिक स्थान को लेकर गहरी बहस छेड़ दी।

"आपको चाहिए.....जाति व्यवस्था में निहित पवित्रता और दिव्यता को नष्ट करें। अंतिम विश्लेषण में, इसका मतलब है कि आपको शास्त्रों और वेदों के अधिकार को नष्ट करना होगा ...आपको वह रख अपनाना होगा जो बुद्ध ने अपनाया था। आपको वह रख अपनाना होगा जो गुरु नानक ने अपनाया था। आपको न केवल शास्त्रों को त्यागना होगा, बल्कि आपको उनके अधिकार को भी नकारना होगा, जैसा कि बुद्ध और नानक ने किया था। आपको हिंदुओं को यह बताने का साहस होना चाहिए कि उनके साथ जो गलत है वह उनका धर्म है, वह धर्म जिसने उनमें जाति की पवित्रता की यह धारणा पैदा की है।" आंबेडकर(1:69, 1979) "6

भारतीय राजनीति और समाज पर आज भी गांधी और आंबेडकर के दर्शन का गहरा प्रभाव है। गांधीजी के अहिंसा और सुधार के सिद्धांत ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका निभाई, जबकि आंबेडकर के संघर्ष ने दलितों के अधिकारों को एक नई दिशा दी।

आज भी भारत में दलितों के अधिकारों की बात करते समय आंबेडकर का नाम लिया जाता है, और उन्हें एक प्रेरणा स्रोत के रूप में देखा जाता है। वहीं, गांधीजी का नाम भी समाज सुधार और दलितों के उत्थान के संदर्भ में लिया जाता है, लेकिन उनके दृष्टिकोण को आलोचना का सामना भी करना पड़ता है, खासकर जब बात आती है दलितों के लिए पूर्ण समानता की।

अंततः दोनों के योगदानों को भारतीय समाज के विकास और दलितों के अधिकारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण और स्थायी धरोहर के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन यदि दलित समुदाय को अपना खैर ख्वाह चुनने की बात आती है तो उनके मस्तिष्क में बाबा साहब भीम राउ आंबेडकर का चेहरा ही आता है। क्यों के उनके जीवन के संघर्ष का आधार जन्म से मृत्यु तक दलित चेतना ही रहा है और महात्मा गांधी अपने सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में महान दलित चेतना के समर्थक रहे हैं।

आधार ग्रंथ सूची:-

1. राजेंद्रमोहन भटनागर, डा अंबेडकर जीवन - मर्म, प्रकाशक - जगतराम एंड संस गांधीनगर दिल्ली, 2011
2. Dhananjay Keer, Dr.Ambedkar life and Mission, Popular parkashan Mumbai, 1954
3. RC Parsad, Ambedkarism, Motilal Banarsidas Publishers Private Limited Delhi, 1993
4. Gail Omvedt, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin books, 2004
5. अर्जुन प्रसाद, युग निर्माता डॉ अंबेडकर कौमुदी पब्लिकेशंस दिल्ली, 2010
6. डा बृजलाल वर्मा, सामाजिक न्याय के पुरस्कर्ता डा भीमराव अंबेडकर, भावना प्रकाशन, कानपुर, 1991- 92

संदर्भ सूची:-

1. Gail Omvedt, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin books, 2004, page 66
2. Gail Omvedt, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin books, 2004, introduction xv
3. Gail Omvedt, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin books, 2004, page 43
4. Gail Omvedt, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin books, 2004, page 53

5. Gail Omvedt, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin
books, 2004, page 61

6. Gail Omvedt, Anuvaad, Ambedkar towards an Enlightened India, Penguin
books, 2004, page 70

सृजन

आखिरी खत

डॉ. श्रीमती विनोद

कालरा

पूर्वाधक्ष

कन्या महाविद्यालय, जालंधर

(प्रथम प्रकाशन 2008)

शव के ऊपर लाल रंग का कफन डाला जा चुका था। रोहित के हाथों में पंडित जी ने सिंदूर की डिबिया और बिंदिया थमा कर कुछ संकेत किया। आंसू भरी आंखों और कांपते हाथों से उसने शव की मांग में सिंदूर भर दिया और माथे पर बिंदिया टिका दी। आखिरी बार अंजलि का चेहरा मैंने तभी देखा। शांत सौम्य मुख, बंद आंखें, बंद होंठ.... पर लग रहा था अभी बोलेगी, 'आ गए आप? कितनी देर कर दी? पहले आ जाते, नज़र भर देख तो लेती...!

पलकों पर ठहरे आंसू अचानक बह निकले। मन हुआ उसके चेहरे को अपने दोनों हाथों में भरकर पूछूं, 'थोड़ी देर तो इंतज़ार किया होता मेरा?' पर इतनी भीड़ के बीच नहीं कह पाया। मन तो नहीं चाह तरह था किंतु रोहित के कंधे पर अपना हाथ रखकर उसे धैर्य बंधाने की कोशिश की। उसने मेरी ओर हैरानी से देखा। शायद जानना चाह रहा था कि मैं इतनी दूर से उसके यहां कैसे पहुंच गया; उसने तो मुझे सूचित नहीं किया था।

यह तो मेरे निर्देशन में काम करने वाली छात्रा रश्मि के साथ अचानक हुई बातचीत से मुझे पता चल गया, वरना अंजलि की मौत की खबर मुझ तक नहीं पहुंचती और जब पहुंचती तब बहुत देर हो चुकी होती। अंजलि ने मुझे लिखा था - " ईश्वर करे मेरे दुनिया से जाने की खबर आपको न हो।"

एक- एक करके आठ - दस लोगों ने उसके पार्थिव शरीर पर लाल - गुलाबी शॉल डालकर अपने कर्तव्य पूरे कर दिए। कंपा देने वाली सर्दी में अंजलि के शरीर को कहीं ठंड न लग जाए, इसलिए रोहित ने अत्यन्त सुन्दर कश्मीरी कढ़ाई वाली लाल रंग की शॉल उसके ऊपर डाल दी और उसे आस पास से देह के नीचे घुसाने की चेष्टा करने लगा। मैं सोच रहा था अब मृत शरीर को ठंड से बचाने को तरकीब करने वाला रोहित तब कहां था जब वह इतने बड़े घर के होते हुए भी सर्द रातों में जमीन पर सोती थी? तब कहां था जब अंजलि की जरा सी चूक पर उसे कमरे से बाहर कर दिया जाता था?

अंजलि मुझे सब कुछ बता चुकी थी इसलिए रोहित की आंखों से बह रहे आंसू मुझे झूठे प्रतीत हो रहे थे।

'ममा.....ममा.....' कह कर रोता हुआ नन्हा साकेत पिता की टांगों से लिपट कर रो रहा था। थोड़ी ही देर में शव के पास एक किशोर पहुंचा, उसने धीरे से अंजलि के मुख से कपड़ा हटाया और '

...ममा...' कहकर फफक पड़ा। यह उसका बड़ा बेटा माणिक था।

कभी फोन पर कभी खतों में अंजलि अक्सर अपने बच्चों का जिक्र करती। बच्चे उसकी सबसे बड़ी ताकत भी थे और सबसे बड़ी कमजोरी भी। वह अक्सर कहती, ' माणिक बहुत भावुक है,छोटी से छोटी बात उसके मन को छू जाती है।पर कभी - कभी वह इतनी समझदारी की बातें करता है कि मुझे लगता है, मैं उसके सामने बच्ची हूं। वह मेरी हर तकलीफ समझता है,पर छोटा है न,इसलिए कुछ कर नहीं सकता।'

अचानक मेरा ध्यान भंग हुआ। भीड़ में खुसर - फुसर हो रही थी। घर के अंदर बाईं ओर सीढ़ियों के पास एक वृद्ध औरत जो शायद अंजलि की मां थी, सिसक रही थी। हू - ब - हू वही चेहरा, वैसी ही आंखें, अंजलि ने अपना रूप रंग मां का ही पाया था।

एक एक करके लोग आ रहे थे। अंजलि के पैरों पर फूल रखकर, सिर झुकाकर जा रहे थे। अच्छी खासी भीड़ जमा थी - बहुत से नाते रिश्तेदार, सगे संबंधी और अंजलि के कॉलेज के कई महिलाएं एवं पुरुष सदस्य। प्रत्येक व्यक्ति अंजलि के व्यवहार की प्रशंसा गाथा कह रहा था।

लोगों के शब्द मेरे कानों पर हथौड़े की तरह वार कर रहे थे। अपनी गलती का एहसास मेरे भीतर गहराने लगा। अपनी गंभीरता के नष्ट होने या दुनिया के डर से मैंने उसके दुःख को समझने का प्रयास नहीं किया।

कुछ भी तो नहीं मांगा था उसने.....न कोई सौगात, न उपहार; न धन, न दौलत-बस उसे लगता था शायद मैं उसे आत्मिक सुख दे सकता हूं। बार बार उसका वाक्य मेरे जेहन में गूंज रहा था, 'आपके पास आकर मैं सुरक्षित महसूस करती हूं।' अब मुझे लगा कि मैं मौत से अंजलि की जिंदगी चुरा सकता था और अगर ये मेरे हाथ में नहीं था तो कम से कम पल भर के लिए उसे आत्मिक सुख तो प्रदान कर सकता था। पहली बार मुझे अपराध बोध हुआ। स्वयं पर ग्लानि अनुभव की मैंने।

शव को बरामदे से बाहर लाया जा रहा था। सफेद वस्त्रों में रोहित सबसे आगे था। सुलगती लकड़ी से भरी मिट्टी की हांडी को एक हाथ में लटकाए, कंधे पर सफेद रंग की पट्टी धारण किए, सिर झुकाए वह चल रहा था। 'राम नाम सत्य है' की गूंज व्याप्त हो गई थी।

सिसकियां और नम आंखों के बीच मैं अंजलि, शांत अंजलि, स्थिर अंजलि विदा ले रही थी। मेरी आंखें उसकी पार्थिव देह के पीछे रश्मि को खोज रही थीं।

आगे आगे रोहित, पीछे चार कंधों पर चढ़कर जा रही अंजलि और उसके पीछे रोते सिसकते चेहरों का लंबा कारवां.....।

पार्थिव शरीर शव वाहन में रखा जा चुका था। आस पास कुछ वृद्ध स्त्रियां और पुरुष बैठ गए थे, कुछ खड़े हो गए थे। अंजलि के सिर की दिशा में रोहित, माणिक और साकेत बैठ चुके थे। शेष सभी अपनी अपनी कारों, स्कूटरों आदि में बैठकर श्मशान भूमि के बाहर पहले पहुंचने की तत्परता दिखा रहे थे।

मैं अभी सोच ही रहा था कि किसके साथ चलूं। अचानक कंधे पर किसी का हाथ महसूस किया। मुड़कर देखा कि रश्मि के पति सुनील खड़े थे। रश्मि ने तो मेरे सामने हाथ जोड़ दिए, पर मुंह से कुछ नहीं बोली। बात करना मैंने भी उचित नहीं समझा। चुपचाप उनके साथ हो लिया।

'कितने बजे पहुंचे आप?' गाड़ी में बैठते ही सुनील ने सवाल उछाला।

'यही कोई आधा - पौना घंटा पहले ' कहकर मैं चुप हो गया। बात करने का मन नहीं था। मन तो अंजलि के लिए रो रहा था।

'यहां का पता कैसे मिला? पहली बार आप आए हैं न यहां? दो प्रश्नों का एक साथ उत्तर कैसे दूं, समझ नहीं पा रहा था मैं। अचानक रश्मि ने समाधान कर दिया, ' अरे नहीं सुनील, डा साहब तो शायद एक बार पहले भी आ चुके हैं, शहर में और फोन पर मैंने अंजलि का पता बता दिया था इन्हें। मैंने तो कहा था कि पहले हमारे घर आ जाते पर.....'रश्मि ने बात अधूरी छोड़ दी पर मुझे काफी राहत महसूस हुई।

अंजलि की हर चिट्ठी में उसका पता लिखा रहता था -संभवतः उसे मेरे उत्तर की प्रतीक्षा थी। मैं नहीं चाहता था कि मेरे और अंजलि के रिश्ते का किसी को पता चले।

अंजलि और मैं दिल्ली के एक ही कॉलेज और एक ही यूनिवर्सिटी में पढ़े। मैं उससे तीन साल सीनियर था। हालांकि दोनों के क्षेत्र अलग-अलग थे पर अक्सर संगोष्ठियों या समारोहों में हमारी मुलाकात होती रहती। वह भाषा की छात्रा थी और मैं भाषा से कोसों दूर.....। भाषा की छात्रा होने के नाते उसके कंधों पर जिम्मेदारियां कुछ अधिक ही रहतीं। काम के प्रति समर्पित थी वह, इसलिए विभागीय गतिविधियों के कारण उसकी सक्रियता अधिक रहती। पूरी यूनिवर्सिटी में प्रसिद्ध थीं वह। अपनी विद्वत्ता, अपनी शालीनता, मधुरभाषिता एवम मितभाषिता के कारण हर कोई उसका मित्र बनने की इच्छा रखता, पर अंजलि एक सीमा में रहती।

हॉस्टल में रहने के कारण हमारी अच्छी खासी जान पहचान हो गई थी। शाम को कैंपस में सैर करते समय अक्सर हमारी मुलाकात हो जाती। कुछ ही महीनों में हमारी यह मित्रता प्रगाढ़ हो चली थी। जब तक वह मेरे साथ रही, तब तक तो कभी नहीं, लेकिन अपनी मंज़िल को पाने पर मैंने उसकी कमी को बार बार महसूस किया। अपने जीवन साथी के रूप में अंजलि को पाने की चाह मन में कई वर्षों तक बनी रही।

एक आज्ञाकारी पति तथा दो बच्चों के पिता के रूप में अपने उत्तरदायित्व को निभाते निभाते कई अंजलि को लगभग भूल चुका था। वर्षों से उसकी कोई खबर नहीं मिली। अचानक पंद्रह वर्षों बाद धर्मशाला में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन में मंच पर से एक बहुत जानी पहचानी आवाज़ सुनाई दी।

इन दिनों मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अपनी ससुराल आया था। कोतवाली बाज़ार में घूमने निकले तो तिब्बतियों की एक दुकान के बाहर लगे एक बैनर पर दृष्टि गई। सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वानों के नामों के बीच 'डा अंजलि राय' के नाम पर दृष्टि स्थिर हो गई।

मैं चौंक गया था। 'हो न हो, यह आवाज़ अंजलि की ही है।' मन ही मन सोच लिया था मैंने।

उसे देखने की इच्छा पैदा हुई, पर समझ नहीं पा रहा था कि पत्नी और बच्चों को कहां छोड़ूं? कुछ देर बाद उन्हें एक रेस्तरां में बिठाकर मैं पंडाल की ओर भागा। पहुंचते पहुंचते सांस फूल गई थी। एक तो चढ़ाई, ऊपर से भीड़।

पंडाल में पैर रखने की जगह नहीं थी। बहुत किनारे पर खड़े रहकर मैंने मंच की ओर देखा। सामने अंजलि खड़ी भाषण दे रही थी। वैसी ही छरहरी, गोरी, नीली आंखों की नीलिमा लिए, अपने उसी आत्मविश्वास के साथ -जैसी उन दिनों यूनिवर्सिटी में हुआ करती थी। अपने वक्तव्य की समाप्ति के बाद सभी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए अंजलि मंच के पीछे लौट गई। मैं भीड़ में से अपने को लगभग खींचता हुआ - सा मंच के पीछे दौड़ा। सीढ़ियों के निकट ही उससे सामना हो गया। इससे पहले कि मैं कुछ कहता

, मुझे अपने सामने पाकर, आंखें फैलाकर वह कह उठी, 'अरे! देव आप? यहां कैसे?' उसकी आवाज में कंपन था। आंखों में पानी - सा तैर आया था।

पहली बार मुझे अनुभव हुआ कि पंद्रह वर्ष पूर्व जिसकी कामना मैंने की थी शायद वही कामना उसके मन में भी रही होगी। एक लंबे अंतराल के बाद एक दूसरे से मिलने की सुखद अनुभूति हम दोनों की आंखों से छिपी न रह सकी। मैंने महसूस किए कि मैं अभी तक हांफ रहा था। अपनी सांस पर काबू पाते हुए मैंने कहा, 'यहां मेरी ससुराल है। मैं पत्नी और बच्चों के साथ कुछ दिन रहने के लिए यहां आया हूं.....' फिर दाहिने हाथ से संकेत करते हुए कहा, 'वो.....वो देखो, सामने वाले रेस्तरां में बैठे हैं वे....'

'तो मिलवाएंगे नहीं उनसे? उसने उत्सुकता से पूछा और मुंह फेरकर झट से आंखें पोंछ लीं। लगा, कुछ छिपा रही थी या फिर.....पता नहीं क्या था उसके लहजे में कि मैं टाल नहीं पाया और उसे लेकर रेस्तरां की ओर बढ़ गया। रास्ते में बातचीत के दौरान पता चला कि विवाह के बाद वह पंजाब में आ बसी थी। पति का अपना व्यवसाय था और वह स्वयं कॉलेज में व्याख्याता थी।

अंजलि को अनीता से मिलवाने की उत्कंठा के साथ एक परेशानी लगातार सता रही थी कि अनीता पता नहीं कैसे रिएक्ट करे। दिल की बुरी तो नहीं थी वह पर स्वभाव से रोबीली थी। बच्चे भी उससे डरते थे। मैं तो अक्सर ही उसके सामने चुप रहता था। कभी जब बोलता तो तू-तड़ाक हो जाती और अंत में मुझे ही हथियार डालने पड़ते।

हम रेस्तरां में पहुंचे और इससे पहले कि मैं... मैं अनीता से उसका परिचय कराता, वह स्वयं बोल उठी - 'मैं अंजलि राय, देव जी के साथ दिल्ली यूनिवर्सिटी में थी।' मेरी आशा के विपरीत अनीता ने उठकर उनका स्वागत किया, उससे ऐसे गले मिली जैसे बहुत पहले से जानती हो। अत्यंत आत्मीयता से उसने उसे अपने पास बिठा लिया, दोनों बच्चों - अणिमा और सौम्य से परिचित करवाया। अणिमा का सिर अंजलि ने बड़े प्यार से सहलाया था। अनीता के संकेत पर सौम्य ने जब उसके पैर छुए तो उसने उसके गाल पर हल्की सी थपकी देकर, सीने से लगा लिया।

उसके चेहरे को बड़े ध्यान से देखकर बोली थी, 'बिलकुल आप पर गया है देव।' सौम्य संकोचवश अनीता के साथ वाली कुर्सी पर बैठ गया था।

लगभग आधे घंटे के बाद अंजलि ने विदा लेनी चाही तो अनीता ने उसे घर आने का आमंत्रण दे डाला। मैं भौंचक्का- सा खड़ा अनीता के इस व्यवहार को देख रहा था। अंजलि फिर कभी आने का वचन देकर जाने लगी तो मैं पुनः उसे पंडाल तक छोड़ने के लिए चला आया।

पूरा रास्ता वह चुप रही, केवल एक वाक्य बोली, 'अनीता बहुत भाग्यशालिनी है, देव।' अंजलि के जाने के बाद मैं कई दिनों तक इस वाक्य का अर्थ खोजता रहा।

हम पंडाल के निकट पहुंच चुके थे। माइक पर बोलने वाले सज्जन की आवाज़ में आवश्यकता से अधिक जोश था। मैं अंजलि से कुछ पूछना चाहता था, कुछ कहना भी चाहता था, पर हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। बस इतना ही पूछ सका, 'कब तक हो यहां?'

कल का दिन रुकूंगी, दोपहर को मीटिंग है। परसों सुबह लौटूंगी। रास्ता बहुत लंबा है न!' दूर किसी पहाड़ी की ओर देखती हुई बोली थी वह।

'कहां ठहरी हो?' अचानक ही पूछ लिया था मैंने।

'धौलाधार होटल में। प्रबंधकों ने तो गेस्ट हाउस में रहने का प्रबंध किया था, पर आप तो जानते ही हैं ऐसी जगहों पर मैं रह नहीं सकती। रोहित भी जानते हैं इसलिए उन्होंने यहां बुकिंग करवा दी थी।' हल्की सी मुस्कान बिखेरते हुए कहा था उसने।

'रोहित?' मैंने अनजान बनने की कोशिश की।

'मेरे पति हैं।' इस संक्षिप्त से उत्तर ने मेरे मन में उसके बारे में और बहुत कुछ जानने की उत्सुकता को जगा दिया। पर इसके लिए सही समय और सही स्थान की आवश्यकता थी। 'अनीता और बच्चे रेस्तरां में मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे' यही सोचकर अगले दिन शाम को मिलने का वचन देकर मैं लौट आया था।

कार के ब्रेक लगने से मैं वर्तमान में लौट आया था। शमशान घाट के बगल में सुनील ने कार रोक ली थी। भीतर मुझे घुटन-सी महसूस हुई। मैं कार से बाहर निकल आया।

'बहुत भली और नेक लड़की थी, भगवान ऐसी किस्मत किसी को न दे।'

'किसी का बुरा नहीं किया था उसने।'

'जान थी कॉलेज की।'

'इतनी विनम्र, इतना मीठा बोलने वाली थी।'

'गुस्सा तो कभी देखा ही नहीं इसके चेहरे पर।'

अंजलि के लिए कहा गया एक-एक वाक्य मुझे अंदर ही अंदर झिंझोड़ रहा था। शर्मिंदगी के कारण डूबा जा रहा था मैं। कितना बड़ा पाप हो गया था मुझसे? उसकी एक इच्छा नहीं पूरी कर पाया मैं। उसने तो अपने सारे रहस्य मेरे सामने खोल दिए थे, फिर भी मैं उसे क्यों नहीं समझ पाया? अजीब-सा द्वंद्व था मन के भीतर। शव-वाहन अभी नहीं पहुंचा था। मेरे अतीत का पन्ना फिर हौले-से खुल गया था।

अगले दिन संध्या के झुटपुटे में मैं होटल पहुंचा। पता नहीं किस अनजानी आशंका से घिरा मैं अनीता से 'घूमने जा रहा हूँ' कहकर चला आया था। कमरे के बाहर लगे घंटी के बटन को दबाते ही अंजलि का स्वर उभरा 'आ जाइए देव,' और गहरे फालसा रंग के सूट में अंजलि स्वयं दरवाज़े तक आ गई।

मुझे लगा जैसे वह मेरी ही प्रतीक्षा कर रही थी। कमरा खूब सुंदर सजा था। हर चीज करीने से रखी थी। सोफे में धंसते हुए मैंने औपचारिकता वश पूछ लिया, 'कोई तकलीफ तो नहीं यहां पर?'

'नहीं, यहां तो नहीं है।' लगा मानो कहना चाह रही हो, 'यहां तो नहीं, ज़िंदगी में बहुत-सी तकलीफें हैं पर तुम जानकर क्या करोगे?'

मेरी आंखें कमरे का मुआयना करने लगी थीं।

कमरे के बीचो बीच एक चौकोर मेज़ दीवार से सटी थी। उस पर टेबल लैंप, पानी से भरा कांच का जगमगाता जग, दो गिलास और एश ट्रे रखी थी। मेरी दाहिनी ओर दीवार में मैं धंसा किंतु बाहर की ओर पीतल जैसी दिखने वाली धातु के फ्रेम में फिट एक आदमकद शीशा, पलंग की बाईं ओर एक सुंदर सफेद लकड़ी की अलमारी, दाहिनी ओर एक लंबी सी खिड़की पर झूलते मोटे धारीदार दो रंग के परदे। सब कुछ सलीके-से रखा था।

उसकी आंखें मेरी दृष्टि का पीछा करती - सी लगीं।

'क्यों देव? कुछ गड़बड़ है क्या कमरे में?' उसने मेरे चेहरे पर दृष्टि गड़ाए हुए पूछा था।

'अरे.....नहीं नहीं.....नहीं...अ.....बहुत सुंदर है सब कुछ, मैं तो बस यूं ही....' मैं अचकचा गया था।

'अच्छा क्या लेंगे आप? चाय या कॉफी?' उसने पूछा तो मुझे याद हो आया कि काफी से अधिक मुझे चाय पसंद थी। यह बात अंजलि भली - भांति जानती थी फिर भी वह पूछ रही थी।

'क्या सोच रहे हैं आप? अरे बाबा, मैं जानती हूं कि काफी नहीं पीते आप, पर मैंने सोचा इतने वर्षों में स्वाद बदल गया हो शायद....' कुछ रुककर उसने फिर पूछा था, 'तो फिर चाय ही चलेगी?' मैं जैसे सोते से जगा था।

'आं...हां चाय ही ठीक रहेगी।'

उसने फोन पर चाय ले आने का आदेश दिया।

मेरे पूछने पर अंजलि ने बताया कि उसके ससुराल में मां, पिता जी, रोहित और दो बच्चे हैं - माणिक और साकेत। चार साल का अंतर था दोनों में। रोहित बिजनेस के सिलसिले में अक्सर दौरे पर

रहते। घर की दुनिया से बेखबर जब घर लौटते, तब भी घर पर नहीं टिकते। धनाभाव तो नहीं था, बस समय ही नहीं था रोहित के पास उसके लिए। दिन भर की बोरियत से बचने के लिए उसने महाविद्यालय में लेक्चरर की नौकरी पा ली थी।

बीच में बैरा आकर चाय रख गया था। चाय बनाते समय बिना मुझे पूछे डेढ़ चम्मच शक्कर डालकर मेरे विश्वास को और भी सुदृढ़ कर दिया था। कुछ भी तो नहीं भूली थी वह। भले ही हमारा रिश्ता कभी मित्रता आगे नहीं बढ़ पाया था पर अब लग रहा था कि जैसे हम दोनों ही, एक दूसरे से बंधे हुए थे। बातें करते- करते चाय कब समाप्त हुई, पता ही नहीं चला। बाहर अंधेरा हो चला था; अंजलि का पता और फोन नंबर लेकर और अपना पता देकर मैंने उससे विदा ली। मुड़कर देखा तो उसकी आंखें भरी - भरी सी लगीं। मेरे जाते ही छलक गई होंगी.....।

अंजलि के पार्थिव शरीर को जैसे ही वहां से बाहर निकाला, 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि फिर से गूंज उठी।

'कितना पवित्र और सार्थक वाक्य है पर जब से मौत के साथ जुड़ा है, उसी का पर्याय बन गया है।' मैं सिहर सा गया। अनेक बार ऐसी यात्राओं में शामिल हो चुका था, पर आज लग रहा है जैसे मेरे

शरीर का एक भाग ही मुझसे अलग हो रहा था।

श्मशान भूमि के प्रवेश द्वार के सामने भीतर सीमेंट की ऊंची शिला पर शव को रख दिया गया था। पानी से भर किंतु छेद दिए घड़े को हाथ में लिए रोहित ने इस शव के इर्द- गिर्द चक्कर काटकर उसके सिर के पीछे घड़ा फोड़ दिया। अनेक दर्दनाक चीखें एक साथ उठीं और फिर धीरे - धीरे सिसकियों में बदल गईं। रोहित, उसके मित्र और सगे- संबंधियों ने अंजलि को चिता पर लिटा दिया। एक- एक करके उसकी शांत देह पर लकड़ियां रखी जाने लगीं।

अपनी किसी चिट्ठी में अंजलि ने लिखा था - 'प्यार नहीं दे सकते देव तो न दो, कोई बात नहीं पर मेरे मरने पर मेरे शरीर पर एक लकड़ी ज़रूर धर देना। कहते हैं कि ऐसा करने वाले को पुण्य मिलता है और मरने वाले को असीम शांति। मेरे लिए इतना कर सकेंगे?' उस वक्त मैं हँस दिया था, 'पागल

कहीं की ' कहकर मजाक उड़ाया था उसका।

मैं रोहित के साथ हो लिया। सुनील भी पीछे आ गया था। ' कहीं भार से अंजलि को कष्ट न हो ' यही सोचकर मैंने पतली - सी लकड़ी उठाई और उसके शव पर डाल दी। इसके बाद मैं वहां खड़ा न रह सका। फफकता हुआ पीछे हट गया।

होटल से लौटने के बाद मैं अंजलि को भूल नहीं पाया। बार- बार मेरी आंखों के सामने उसकी भरी - भरी आंखें घूम जाती। तीन चार अखबारों में छपी सम्मेलन संबंधी उसकी तस्वीरें देखीं। पता नहीं क्या सोचकर उसके पते पर भेज दीं। प्रत्युत्तर में एक बहुत सुंदर संदेश मिला। समझ में नहीं आ रहा था कि इसके जवाब में क्या लिखूं, बस मोबाइल पर ' थैंक्स ' और ' मिसिंग ' शब्द लिख कर भेज दिया। मेरा यही एक शब्द उसे कहीं गहरे छू गया था। अपने खतों में उसने बार बार इसका जिक्र कर दिया था।

कभी दिनों, कभी हफ्तों, कभी महीनों के अंतराल में मुझे उसके अनेक खत मिलते रहे। मैंने किसी का भी कोई उत्तर नहीं दिया, पर उसका हर खत संभाल कर रखा था। जब कभी अकेला होता, उन्हें निकाल कर बार- बार पढ़ता और इसी कारण मुझे घर लौटने में देरी हो जाती। उसने मुझे ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था पर आज लग रहा था कि मैं उस प्रतिष्ठा की, उस गरिमा की रक्षा न कर सका।

अनीता अक्सर मेरे देर से लौटने पर शिकायत करती और मैं व्यस्तता का बहाना बनाकर यदा - कदा उस पर खीझ उठता। रविवार को भी बाहर चला जाता, अंजलि के फोन की प्रतीक्षा करता, बात न होने पर बुझे मन से घर लौट आता।

मन में अंजलि के लिए प्यार पनप तरह था परंतु मेरा पुरुष अहंकार उसे व्यक्त करने की इजाज़त कभी नहीं दे पाया। विद्यार्थी काल में इसकी पुष्टि हो जाती तो शायद यह प्यार परवान चढ़ चुका होता पर उम्र के इस दौर में मुझे यह सब अप्रत्याशित सा लगा।

धीरे धीरे अंजलि के खतों से उसके परिवार की स्थिति स्पष्ट होती गई। उसका दुख परत- दर - परत खुलता गया। मैं बार बार उसे परिवार में अपनी पोजीशन को मज़बूत करने के लिए, अपना सम्मानित स्थान बनाने के लिए समझाता और कभी कभी अपने प्रति होने वाले अन्याय के खिलाफ खड़ा होने के लिए भी कहता, किंतु हर पल दबी - दबी सी रहने वाली भोली - भाली - सी अंजलि मेरी सलाह को अपने आचरण में नहीं उतार पाई।

अंजलि बहुत कुछ कहना चाहती थी मुझसे। मुझसे मिलने की, बात करने की तीव्र उत्कंठा और मन में छिपे प्यार की स्वीकृति ने कहीं मेरे में उसे पूरा का पूरा पाने लालसा को जगा दिया था। दबे- दबे स्वर में एकाध बार फोन पर मैंने अपनी इच्छा भी जाहिर कर दी थी पर उसकी मर्यादा, स्वाभिमान और अपनी ही नजरों में गिर जाने की आशंका ने उसे रोक दिया था।

अब सोच रहा था कि अनजाने में उसने बहुत बड़ा पाप करने से रोक लिया था मुझे। पर उस वक्त.....उस वक्त उसके शरीर पर अधिकार न मिलने से तिलमिला उठा था मैं और इसी अहंकार में मैंने उसकी पवित्रतम इच्छा का भी गला घोट दिया था मैंने। उसके सारे खतों को जला डाला था क्रोध के मारे।

अंजलि के पार्थिव शरीर को मुखाग्नि देने के लिए पंडित जी ने जलती हुई लकड़ी रोहित को थमा दी थी। सदा आग से भय खाने वाली अंजलि की देह को आग दिखाई जा चुकी थी। खत में उसने लिखा था उसने कि रोहित अक्सर रात में उसके मना करने पर सिगरेट से उसके शरीर को दाग देता था। इसी से वह उसकी इच्छा के आगे हथियार डाल देती थी।

धू- धू करके चिता जलने लगी। पल भर में सब कुछ मिट्टी हो गया था। कुछ देर और रुकना असंभव - सा हो गया। रोहित से विदा लेकर मैं जा ही रहा था कि रश्मि ने रोक लिया, 'आप घर होकर जाइएगा डा साहब। अंजलि आपके लिए कुछ छोड़ गई है मेरे पास। '

मैं चौंक पड़ा, जैसे किसी नंगी तार ने मुझे छू लिया हो। अंजलि जाते जाते कहीं अपने प्यार का रहस्य तो नहीं खोल गई?

आशंकित- सा मैं सुनील और रश्मि के घर पहुंचा। बिना देर किए रश्मि हाथ मुंह धोकर चाय बनाकर ले आई। मैं डर रहा था, चुप बैठा था। कुछ ही देर में रश्मि ने लाल रिबन में बंधा हल्के नीले रंग का एक पैकेट मुझे थमा दिया था। भरे मन से जैसे वह बोली थी, 'परसों ही उसने मुझे अपने घर बुलाया था। मुझे यह पैकेट देते हुए उसने कहा था कि जब कभी मैं आपसे मिलूं तो दे दूं। मुझे लगता है उन्हें कहीं अनुभव होने लगा था कि वे अधिक दिनों तक जिंदा नहीं रह पाएंगी। नहीं तो....' रश्मि ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया था।

'नहीं तो क्या?' मैं अपनी बेचैनी दबा नहीं सका।

'नहीं तो पिछले दिनों ऐसा व्यवहार न करती। काफी दिनों से चुप चुप थी। हर एक से अपनी हर भूल के लिए क्षमा मांग रही थी।' रश्मि शून्य में कुछ देख रही थी।

इस स्थिरता को में सहन न कर सका।

दोनों के आग्रह के बावजूद मैं वहां न रुक सका। जम्मू की बस पकड़ ली। रास्ते भर उस पैकेट को देखता रहा, पर खोलने का साहस न जुटा पाया। घर पहुंचने से पहले उस पैकेट को कपड़ों की तह के नीचे छिपा लिया। अनीता के सामने यह रहस्य कैसे खोलता.....?

रात भर सो नहीं पाया। सुबहा तैयार होकर बिना नाश्ता किए ऑफिस के लिए निकल पड़ा। कमरे के अंदर पहुंचते ही चिटकनी चढ़ा दी। बैग में से वह नीला पैकेट निकाला। खोला - देखा - एक बहुत सुंदर डायरी थी। पहले पृष्ठ पर लिखा था - 'देव, तुम्हारे लिए।'

और भीतर गुलाबी रंग के एक कागज़ में एक खत रखा था। धड़कते दिल से खत खोला।

प्रिय देव,

देखो, इस खत के शुरू में तुम हो और अंत में मैं। खत के इस पन्ने को मोड़ोगे तो भी हम समानांतर ही रहेंगे। इसे एक बार और मोड़ोगे तो भी हम सामने तो रहेंगे पर बीच में परतों की सूरत में दोनों के आगे अपनी अपनी सीमाएं रहेंगी। अब खत को खोल कर उन कोनों को जहां मेरा और तुम्हारा नाम लिखा है - जोड़ो। दोनों मिल तो जायेंगे पर शेष दोनों कोने हमारे नामों से कहीं दूर टूटे हुए से प्रतीत होंगे। यही स्थिति ज़िंदगी की भी होती। हम मिलते तो शायद हमारे परिवार टूट जाते।

खत में लिखे नामों की भांति हम कभी नहीं मिल सके।

मैंने कभी तुमसे कुछ न मांगा, न चाहा। केवल अपने माथे पर तुम्हारे प्यार का अंकन महसूसना चाहती थी, तुम्हारी बांहों के घेरे में बंधकर एक बार....सिर्फ एक बार जानना चाहती थी कि प्यार क्या होता है.....

मेरा सारा सच जानकर भी तुम मेरी रंगहीन ज़िंदगी में रंग नहीं भर सके। तुमने मुझे कभी कुछ नहीं लिखा, कभी भी मेरे किसी खत का जवाब नहीं दिया। आज यह डायरी तुम्हे इसलिए भेंट कर रही हूं ताकि इसमें तुम वह सब लिख सको, जो तुम मुझे कभी नहीं कह पाए। जब- जब लिखोगे, उन शब्दों की गुंजायूँ तक अवश्य पहुंचेंगी।

अगला जन्म होता है या नहीं यह तो नहीं जानती, पर यदि होता है तो इच्छा है तुम्हारे हाथों
सिंदूर पाऊं। मेरे इस खत को अग्नि की भेंट मत करना। अच्छा जाती हूं.....सदा के
लिए.....अनीता और बच्चों को खूब प्यार देना।

तुम्हारी ही -----

अंजलि

कितनी बार इस खत को पढ़ा, पता नहीं। खत का एक एक शब्द मन में उतर चुका है। रोज़ सुबह -
शाम इस खत को मन ही मन दुहराता हूं। अनीता और बच्चों का बहुत ध्यान रखता हूं। गुलाबी रंग
का खत सिंदूरी हो चला है। आंखें देखती हैं - अंजलि का चेहरा आंसुओं से भीग रहा है। बार - बार
उसकी सूनी मांग दिखाई देती है। हाथों में सिंदूर थामे बरसों से अंजलि की मांग भरने की राह देख
रहा हूं।

लघुकथाएँ

प्रो.(डॉ.) योगेश चन्द्र सूद

सूद कॉटेज, प्रोफेसर कॉलोनी, मैहतपुर, जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश -174315

दूरभाष :7018655242

लघुकथा - नकली अक्ल

गांव के चबूतरे पर कुछ बुजुर्ग एवं कुछ युवक बैठे हुए थे। युवक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बारे में बातचीत कर रहे थे। उनकी बातों से बुजुर्गों की इस विषय में उत्सुकता बढ़ गई। उन्होंने वहां बैठे युवकों से कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बारे में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जताई। लड़कों ने बड़ों को बताया कि आज का युग विज्ञान एवं तकनीकी सतर्कता का युग है। उनका मत था कि आधुनिक युग में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने कठिन से कठिन चीजों को भी बहुत आसान बना दिया था। युवकों ने ऐआई की भारी प्रशंसा की। बुजुर्गों का इस विषय पर मत थोड़ा भिन्न था। एक बुजुर्ग ने तनिक आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा, “भोजन तो हमें स्वयं ही मुंह में डालना पड़ेगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता से तो हमारा पेट नहीं भरेगा”। दूसरे बुजुर्ग ने कहा, “हमें अपने खेतों में स्वयं हल चला कर बीज बोने होंगे, तभी तो फसल पैदा होगी”। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तो हमारे खेतों में अनाज पैदा नहीं कर सकती। तीसरे बुजुर्ग ने व्यंग्य करते हुए कहा, “ऐसा प्रतीत होता है कि अब अक्ल नकली हो गई है। परन्तु मूर्खता तो ओरिजिनल अर्थात् असली ही रहेगी”। यह सुन कर सभी हंस पड़े। बुजुर्गों ने युवाओं को समझाया कि कोई भी असली चीज़ असली ही होती है। नकली चीज़ असली चीज़ का मुकाबला नहीं कर सकती। उन्होंने एक मत से कहा कि असली अक्ल ईश्वर की अनमोल देन है तथा विज्ञान तथा

तकनीकी सहायता के द्वारा पैदा की गई नकली अक्ल उसके आगे कहीं नहीं ठहरती।

लघुकथा - गांठ

संजीव सेठ दीन दयाल का बहुत पुराना तथा वफादार नौकर था। सेठ जी उस पर आंख मूंदकर भरोसा करते थे। एक दिन सेठ दीन दयाल की दुकान से दो लाख रुपए चोरी हो गए। संदेह संजीव पर गया। संजीव ने रोते-रोते कहा, “सेठ जी, मैंने यह चोरी नहीं की है। आप मेरा विश्वास करें”। परन्तु सेठ जी नहीं मानें। पुलिस को बुलाया गया। पुलिस ने चोरी की गुत्थी सुलझाने हेतु सर्वप्रथम दुकान पर लगे सीसीटीवी कैमरों को खंगाला। कैमरों को देखकर यह साफ हो गया कि चोरी सेठ दीन दयाल के सबसे छोटे बेटे ने की थी जिसे जुए तथा शराब की बुरी लत लगी हुई थी। संजीव ने सेठ साहिब की नौकरी छोड़ने का निर्णय कर लिया। सेठ जी ने अपनी ग़लती को स्वीकार करते हुए पछतावा व्यक्त किया। उन्होंने संजीव को बहुत समझाया कि वह उनके यहां नौकरी न छोड़े। परन्तु संजीव ने बड़े शांत भाव से कहा, “सेठ जी, मैंने आपका नमक खाया है। मैं आपका सदैव आभारी रहूंगा। परन्तु यदि विश्वास की डोर में शक की गांठ पड़ जाए तो वह डोर पहले जैसी नहीं रहती”। संजीव ने सेठ दीन दयाल की नौकरी छोड़ दी। सत्य ही कहा गया है कि विश्वास बनाने में बहुत वर्ष लग जाते हैं परन्तु इसके टूटने में एक पल भी नहीं लगता। यह भी एक सत्य है कि संदेह व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है।

सहोदर भाई

डॉ. निर्मल कौशिक

धर्मचन्द एक स्कूल में अध्यापक थे। वेतन कम होने के कारण परिवार का गुजारा कठिनाई से होता था। सुबह-शाम ट्यूशन पढ़ाकर अपने परिवार का पेट पाल रहे थे। सगे सम्बन्धी थे, भाई बहन सब कुछ था। एक भाई और पाँच बहनें भी थी। मगर गरीब के पास कौन फटकता है। उनके पास भी कुछ पूर्वजों की जमा पूंजी होती तो सभी धर्मचन्द के इर्द-गिर्द घूमते। धर्मचन्द को इसी बात का संतोष था कि चलो कोई हमारे से माँगने तो नहीं आता। कभी-कभी किसी रिश्तेदार का पत्र आ जाना इस घर में अचम्भे की बात थी।

अभी धर्मचन्द दोपहर का खाना काकर लेते ही थे कि उनका छोटा बेटा एक पत्र लेकर आया। 'पिता जी यह पत्र आया है।'

'किसका है?' धर्मचन्द ने पूछा।

'पता नहीं। उर्दू में है।' बेटे ने कहा।

'तो मेरी ऐनक लाओ। अपनी माँ को भी बुलाओ।' धर्मचन्द ने कहा।

'कहाँ से आया है यह पत्र? कोई नई मुसीबत न आ जाए।' धर्मचन्द की पत्नी ने ऐनक पकड़ाते हुए कहा।

धर्मचन्द पत्र पढ़ता है।

आदरणीय भाई साहब,

सादर प्रणाम, कुशलता के बाद समाचार है कि मुझे एक महीने से टाइफाइड बुखार है। कोई दवाई असर नहीं कर रही। डबल अटैक हो गया है। लगभग एक हजार लग चुका है। कृपया 500 रुपए भेज

देवें। मेरी सेहत बहुत खराब हो चुकी है। समय हो तो एक दिन आकर मिल जावें। बच्चों को प्यार, भाभी जी को प्रणाम।

आपका भाई

जगतराम

धर्मचन्द ने पत्र पढ़कर ऐनक उतार कर अपनी पत्नी लीला की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा, 'क्या करना है अब।'

'देख लो, जैसा करना है। वैसे तो कभी भाई की याद आती नहीं। मुसीबत में भाई याद आता है।' लीला ने चिल्लाते हुए कहा।

'अब यह समय ऐसी बातों का नहीं है। बीमार है तो क्या करे बेचारा।' धर्मचन्द ने दुखी होकर कहा।

'पिछली बार भी यहाँ से 600 की दवाई भेजी थी। ठीक होने के बाद पूछो पूछा भी नहीं कि कितने पैसे की है। बड़े भाई ने जैसे उसका कर्ज देना हो, वैसे तो बड़ा ससुराल वालों का साथ देता है। अब पैसे भी उनसे मांग लेता।' लीला थोड़े क्रोध में बोली।

धर्मचन्द ने उसे शांत करते हुए कहा, 'इस समय हमें ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए। अब तो यह सोचो क्या करना है?'

'आपने जैसा करना है, करो। मैंने पहले कभी कुछ नहीं कहा तो अब क्या कहूंगी। वैसे भी मेरी सुनता भी कौन है।' लीलावती उठकर जाने लगी।

'बैठो सुनो मेरी बाता।' धर्मचन्द ने उसे बिठाया।

'मगर तुम्हारी भी राय तो जाननी है मुझे।' धर्मचन्द ने थोड़ा धीमे से कहा।

'मैं सहमत हूँ, जो भी करोगा।' लीलावती कह कर चली गई।

धर्मचन्द अपने अतीत में खो गए। धर्मचन्द को याद आया कि जब उनकी लीलावती से शादी हुई थी तो उसका छोटा भाई जगतराम तीसरी कक्षा में पढ़ता था। माता-पिता छोटी आयु में ही गुजर गए थे। उनकी पाँच बहनें थी। अभी केवल दो की ही शादी हुई थी। तीन विवाह के योग्य हो चुकी थीं। उधर आर्थिक कठिनाई ने नाक में दम कर रखा था। दो वक्त भोजन के लाले पड़े हुए थे। लीलावती की नई-नई शादी हुई थी। उसके सारे चाव धरे रह गए। जब भरपेट भोजन न मिले तो आभूषण

कहाँ से मिले। लीलावती संतोषी स्वभाव की स्त्री थी। धर्मचन्द थोड़ा बहुत दवाई बूटी का पिता पुरखी काम भी जानते थे।

गाँव में छोटी सी दुकान थी। वहीं से कमा कर घर का गुजारा चला रहे थे। मगर लोगों को उदार में दवा दे देकर दुकान चौपट हो गई। अंत में कुछ भी न कर सकने पर अपने ननिहाल चले आए। इधर 50 रुपए माह पर एक स्कूल में अध्यापक की नौकरी मिल गई। जैसे-तैसे गुजारा चलने लगा। स्वयं इधर-उधर ट्यूशन करके अपना खर्च उठाते और 35-40 रुपए गाँव में परिवार के लिए भेज देते। विवाहित होते हुए भी 12 वर्ष स्वयं खाना पकाते रहे, केवल भाई-बहनों के लिए। इसी बीच तीन बहनों की शादियाँ भी करनी पड़ीं। छोटे भाई जगताराम ने मैट्रिक तो पास कर ली मगर उसे कोई रोजगार नहीं मिला। अगर मिलता भी तो उसे पसंद नहीं आता। अन्त में धर्मचन्द ने अपनी पत्नी और दो बच्चों सहित जगताराम को भी अपने पास शहर में बुला लिया। यहाँ आकर भी वह एक वर्ष खाली ही रहा। एक दिन धर्मचन्द ने छोटे भाई जगताराम से कहा, 'जगताराम मैं स्कूल के कुछ बच्चों की आपको ट्यूशन दिलवा देता हूँ। आप उनके घर जाकर पढ़ा दिया करो। मैं भी तो जाता हूँ। जब कोई अच्छी नौकरी मिल जाए तो छोड़ देना।' पहले तो कुछ देर जगताराम चुप रहा बाद में क्रोध में बोला, 'यह भी कोई काम है। पहले कुत्तों की तरह घर-घर जाओ और फिर महीने भर मिलें केवल दस रुपए।'।

धर्मचन्द को बहुत बुरा लगा। उसने कहा, 'ठीक है तो फिर नौकरी ढूँढो। घर में खाट पर पड़े रहने से नौकरी नहीं मिलेगी।'।

कुछ दिन बाद धर्मचन्द ने शांत मन से उसे फिर समझाने का प्रयास किया, 'जगताराम मेरी बात गौर से सुनो। डॉ. बाबूराम शहर के नामी डाक्टर हैं। उनका लडका मेरा विद्यार्थी है। डॉक्टर साहब से मैंने तुम्हारी नौकरी के लिए बात की थी। वह आपको 60 रुपए महीना तनख्वाह देंगे। बाद में तनख्वाह हर साल बढ़ती रहेगी। थोड़े सालों में कम्पाउंडर बन जाओगे।'।

जगताराम सब कुछ सुन कर बोला, 'मैं मरीजों की गंदगी साफ करने, मरहम पट्टी करने के लिए, खून पोंछने, पीक साफ करने का काम मुझसे नहीं होगा। यह तो बहुत ही घटिया काम है।'।

यह कहकर जगताराम चुप हो गया।

'तो फिर कोई अच्छा काम ढूँढो न। कुछ करके तो दिखाओ।' धर्मचन्द ने कहा।

अब पानी सिर से निकल चुका था। धर्मचन्द समझाते-समझाते थक चुका था। एक दिन धर्मचन्द ने जगतराम को समझाने का प्रयास किया कि 'देखो आपकी शादी की आयु हो चुकी है। जब तक तुम कोई काम नहीं करोगे, शादी कैसे करेंगे। ऐसा करो मैं कुछ रकम उधार लेकर तुम्हें करियाने की दुकान खोल देता हूँ। धीरे-धीरे काम चल जाएगा।'

जगतराम एकदम आग बबूला हो गया - 'अगर दुकान ही करनी थी तो फिर इतनी मेहनत से दिन-रात पढ़ाई करके मैट्रिक पास क्यों की थी।'

'पढ़े-लिखे तो दुकान और भी अच्छी तरह से कर सकते हैं।' धर्मचन्द ने समझाया।

इन्हीं सब बातों से तंग आकर जगतराम अपने एक मित्र के पास लुधियाना चल आया। दो-चार दिन रहने के बाद उसे लगा कि उसका मित्र तो फैक्ट्री चला जाता है। मैं यहाँ कितने दिन पड़ा रहूँगा। उसने अपने मित्र से कहा कि अपनी फैक्ट्री में मुझे भी कोई काम दिला दो।

'मैंने तो आपसे इसलिए बात नहीं कि कि आप बुरा मान जाओगे। मेरी फैक्ट्री में एक स्थान खाली है। मशीन मैन का। मैं कल ही मालिक से बात करूँगा।'

बस फिर क्या था, जगतराम को वहीं फैक्ट्री में नौकरी मिल गई। मशीनमैन की। तनख्वाह कम होने पर भी वह खुश था। ऊपर से ओवरटाइम भी लगा लेता था।

धर्मचन्द भी बहुत खुश था। मगर अब उसे चिन्ता थी जगतराम की शादी की। ताकि लोग यह न सोचें कि अपना घर परिवार तो बसा लिया। छोटा भाई इधर-उधर भटक रहा है। लीलावती ने अपनी छोटी बहन की शादी जगतराम से करा दी। धर्मचन्द अब निश्चित था। मगर जगतराम ने उसका कभी एहसान नहीं माना।

धर्मचन्द अपने परिवार में संतुष्ट था। उसके चार लड़के और एक लड़की थी। सभी बच्चे पढ़ रहे थे। ट्यूशन वगैरह करके धर्मचन्द उनका पालन पोषण कर रहा था। जगतराम के भी दो लड़के और एक लड़की पैदा हुई। अब बच्चे बड़े हो गए थे। दोनों भाइयों को अलग हुए 20 वर्ष हो गए थे। जरूरत पड़ते पर या किसी संकट में जगतराम भाई को पत्र लिख देता था। धर्मचन्द बड़ा होने के नाते उसका उत्तर भी देता था। मगर धर्मचन्द के मन में एक कसक थी कि मैंने जगतराम के लिए सब कुछ किया। मगर उसने कभी नहीं पूछा कि मुझे भी किसी मदद की जरूरत तो नहीं।

इसी बीच जगतराम ने जमीन खरीदकर ससुराल वालों के साथ मिलकर एक सुंदर सा मकान भी बना लिया था और उसमें रहने लगे थे। एक दिन उसने धर्मचन्द को एक पत्र लिखा।

आदरणीय भाई साहब

सादर प्रणाम

हमने नया मकान बना लिया है, आकर देख जाओ..।

आपका भाई

जगतराम

धर्मचन्द ने उत्तर में लिखा

‘प्रिय भाई जगतराम शुभाशीर्वादा.. मैंने नए मकान बहुत देखे हैं मगर आप जैसा भाई नहीं देखा। अगर मुझे बुलाना ही था तो जब जमीन खरीदी थी तब बुलाता। जब नींव डाली थी, तब बुलाता। जब गृह प्रवेश हुआ था, तब बुलाता। अब जब सब कुछ हो गया है तो अब बुलाने और आने का क्या मकसद रह गया है। मैं बहुत खुश हूँ, परमात्मा आप सबको सदा खुश रखें।’

आपका भाई

धर्मचन्द

इस प्रकार दरार बढ़ती गई। मगर जब-जब भी जगतराम पर कोई संकट आता तो वह अपने बड़े भाई धर्मचन्द को पत्र लिख देता। पिछले साल भी उसने बीमार पड़ने पर पैसे मंगवाए थे। इसी उधेड़बुन में पता नहीं कब धर्मचन्द की आँख लग गई। कहते हैं कि जिन विचारों के साथ आपको नींद आ जाए वही विचार स्वपन के रूप में आते हैं। धर्मचन्द को एक स्वपन आया कि उसका छोटा भाई जगतराम चारपाई पर लेटा हुआ है। वह सूखकर कांटा हो गया है। डॉक्टर उसकी नब्ज पकड़े हुए हैं। उसकी पत्नी और बच्चे रहस्यमई आँखों से उसे देख रहे हैं। इतने में धर्मचन्द भी वहाँ पहुँचता है। सभी थोड़ा आशावान् हो जाते हैं। डॉक्टर दवाई देकर चला जाता है। जगतराम पानी माँगता है। उसकी पत्नी उसे चम्मच से पानी पिलाती है। वह आँखें खोलता है। धर्मचन्द को देखकर ही उसकी आँखों में चमक आ जाती है। वह उठना चाहता है मगर स्वयं उठ नहीं पाता। धर्मचन्द को देखकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं।

‘बड़े भाई साहब ! मुझे माफ कर दो। मुझे गला लगा लो। मैं भटक गया था। मुझसे बहुत भूलें हुई हैं। उसी का फल भोग रहा हूँ।’ जगतराम ने हाथ जोड़कर कहा।

‘बस अब शांत हो जाओ। अभी कुछ नहीं हुआ है। तुम्हें अपनी गलती का अहसास हो गया है न। अब आगे मत करना। गलतियाँ हर इंसान करता है। अब धैर्य रखो, तुम ठीक हो जाओगे। तुम मेरे छोटे भाई हो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। घबराओ मत।’ धर्मचन्द ने आगे कहा।

‘जगतराम तुम मेरे छोटे भाई हो। मैंने तुम्हारी सदा ही मदद की है। जितनी मुझ में हिम्मत थी। अब भी करूँगा। मैं तुम्हारा सहोदर भाई हूँ। मेरा तुम्हारा अटूट सम्बन्ध है। हमारा खून एक है। अपना, अपना ही होता है।’

उसकी आँखों से आँसू छलक आए।

‘भाई साहब समय का खेल है। मुझे ससुराल वालों ने धोखा दिया है। यह जमीन मुझे किस्तों पर लेकर दी है। बीमारी के कारण मेरी नौकरी भी छूट गई है। अब मैं कर्जदार हूँ तो वे सब मुँह मोड़ गए हैं।’ जगतराम फिर रोने लगा।

‘अब मैं तुम्हारे साथ हूँ। घबराना नहीं, सब ठीक हो जाएगा। तुमने ही मुझसे मुँह मोड़ा था, मैंने नहीं। ससुराल वाले भले ही तेरा साथ छोड़ दें मैं नहीं छोड़ सकता। मैं हर वक्त तेरे साथ हूँ। मैं सहोदर हूँ, सगे भाई कितना भी लड़ झगड़ लें, कितना भी दूर रहें, मगर उनका सम्बन्ध नहीं टूट सकता।’ समझाते हुए धर्मचन्द ने कहा।

जगतराम धीरे-धीरे उठने की कोशिश करता है। धर्मचन्द उसे सहारा देकर बिठाता है। अपने गले लगाता है। दोनों भाई आँसुओं की धारा में अपना वैर विरोध सब बहा देते हैं।

लीलावती ने आकर धर्मचन्द को आवाज देकर जगाया कि ‘आपके ट्यूशन वाले विद्यार्थी आ गए हैं।’

धर्मचन्द हड़बड़ाकर उठा। उसके मुँह से निकला, ‘जगतराम घबराओ नहीं।’ आँखें खोलकर देखा तो सामने लीलावती खड़ी थी। वह हतप्रभ सा होकर रह गया। लीला ने कहा, ‘क्या कह रहे थे? कोई बुरा स्वप्न तो नहीं देखा।’

धर्मचन्द ने कहा, ‘आज ही जगतराम को 500 रुपए मनीआर्डर करवा दो।’

‘बहुत अच्छा। मगर आप तो कहा करते थे कि अब..।’ लीलावती को धर्मचन्द ने बीच में ही रोक दिया।

‘बस..बस लीला, मैंने निश्चय कर लिया है। उसे रुपए भेजने हैं तो भेजने हैं। वह मेरा सहोदर भाई है। इस संकट में मैं उसकी मदद नहीं करूँगा तो कौन करेगा।’ इतना कहकर धर्मचन्द ट्यूशन पढ़ाने चले गए।

(नोट – अखिल भारतीय हिन्दी परिषद, पंजाब द्वारा पंजाब स्तरीय कहानी प्रतियोगिता -2025
द्वितीय स्थान पर विजेता कहानी)

आलेख

नमन्ति फ़लिनः वृक्षाः

रूपसिंह चन्देल

फ्लैट नं.403, टॉवर-2, विपुल गार्डन,

धारूहेड़ा-123106, हरियाणा

मो. नं.8059948233

25 जनवरी, 2025 (शनिवार) को एक सरकारी कार्य से देहरादून जाना हुआ. दोपहर दो बजे राज्य अतिथिगृह पहुंचा. देहरादून जाने का कार्यक्रम तय होने के पश्चात से ही हिन्दी के वरिष्ठतम आलोचक मधुरेश जी से मिलने की आकांक्षा प्रबल हो उठी थी, लेकिन यह स्पष्ट नहीं था कि जिस कार्य से जा रहा हूं उसमें मेरी कितनी व्यस्तता रहने वाली थी. मधुरेश जी अब अपने पुत्र अनुराग शंखधर के पास देहरादून में रह रहे हैं.

अतिथिगृह पहुंचने के बाद मैंने उस कार्य पर दृष्टि डाली जिसके लिए मुझे उत्तराखण्ड सरकार ने बुलाया था. स्पष्ट हुआ कि मैं उसे निर्धारित समय में समाप्त कर लूंगा. अतः मैंने मधुरेश जी से मिलने का निर्णय किया और शाम छह बजे अनुराग शंखधर जी को फोन करके 26 को सुबह 10 बजे मधुरेश जी से मिलने का समय चाहा. कोई संकट नहीं था. उन्होंने पता व्हाट्स एप किया.

सुबह ड्रायवर को साढ़े नौ बजे 25, विष्णु विहार, अजाबपुर कलां, आकाशवाणी कॉलोनी के निकट चलने को तैयार रहने के लिए कहा. चलने के समय ड्रायवर ने लोकेशन मंगाने के लिए कहा.

अनुराग ने लोकेशन व्हाट्स एप किया. ठीक दस बजे गाड़ी रोकते हुए ड्रायवर बोला, "यहीं कहीं मकान होना चाहिए." मैंने सामने मकानों पर नजर दौड़ाई. आश्चर्य, ठीक सामने वाले मकान में

अनुराग शंखधर की नेमप्लेट थी. इतना सटीक," मैंने ड्रायवर से कहा. वह मुस्कराया और धीरे से बोला, 'जीपीएस का कमाल है सर."

मेरे ऊपर पहुंचते ही (वे पहली मंजिल में रहते हैं) मधुरेश जी ने लपककर मुझे गले लगाया. मैंने चरण स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाए, जिसे उन्होंने पकड़ लिया और मेरा हाथ पकड़ मुझे सोफे पर बैठाते हुए मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गए. डेढ़ घण्टे बहुत ही आत्मीयता के साथ मधुरेश जी बातें करते रहे. उन्होंने पिछले दिनों क्या किया और उन दिनों क्या कर रहे हैं, और हाल में किन प्रकाशकों से पुस्तकें प्रकाशित हुई और किन से आने वाली हैं. यह बताते रहे. उन दिनों वह शरच्चन्द्र पर कार्य कर रहे थे और प्रभूत मात्रा में सामग्री एकत्र कर रखी थी. कुछ सामग्री मुझे दिखाई भी. कुछ दिन पहले ही राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी पर केन्द्रित उनकी पुस्तक 'तोता मैना की कहानी' वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुई थी, चलते समय जिसकी एक प्रति उन्होंने मुझे भेंट की.

मधुरेश जी का जन्म 10 जनवरी, 1939 को हुआ था. जब मैं मिला तब वह 86 पार कर चुके थे. इस आयु में नियमित और बड़े कार्य करने वाला, मेरी दृष्टि में, अपने समय में शायद दूसरा कोई अलोचक रहा. वह इतना सक्रिय हैं इसीलिए वह अपनी आयु से दस वर्ष छोटे समझ आते हैं. वह

1

जबर्दस्त अध्येता हैं. हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों के साथ उन्होंने विश्व के लगभग सभी महान रचनाकारों को पढ़ा है. उन्होंने मेरी सभी अनूदित पुस्तकें (हाजी मुराद, लियो तोलस्तोय का अंतरंग संसार, और तोलस्तोय की जीवनी के साथ मेरी लिखी दॉस्तोएव्स्की की मौलिक जीवनी -दॉस्तोएव्स्की के प्रेम) पढ़ीं थी. मित्रो से उन्होंने मेरे अनुवाद की प्रशंसा भी की थी. उस दिन मुझे भी कहा, "आपने तोलस्तोय की जीवनी का अनुवाद करके महत्वपूर्ण कार्य किया है."

जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं अजीमुल्ला खां पर उपन्यास लिख रहा हूं. उन्होंने प्रकाशित होने के तुरंत बाद उपन्यास भेजने के लिए कहा था. 'क्रान्तिनायक अजीमुल्ला खां' पर उन्होंने नौ हजार से अधिक शब्दों का लेख कथाक्रम के लिए लिखा. मुझे भी भेजा था. उस दिन मधुरेश जी ने बरेली में उनकी कुछ पुस्तकों के लोकार्पण कार्यक्रम की चर्चा की. तिथि तब तक तय नहीं हुई थी.

मैंने उसमें सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की थी. जब कार्यक्रम 20 अप्रैल को होना निश्चित हुआ तो मुझे सूचना दी गई, लेकिन अपरिहार्य कारणों से मैं नहीं जा पाया. बरेली में मधुरेश जी की जिन चार पुस्तकों का लोकार्पण हुआ उनमें 'तोता मैना की कहानी' भी थी.

27 जनवरी को सुबह दस बजे मुझे धारुहेड़ा के लिए निकलना था. सुबह पांच बजे से आठ बजे तक मैंने 'तोता मैना की कहानी' के पचास से अधिक पृष्ठ पढ़ डाले थे और शेष रास्ते में पढ़े. मधुरेश जी के आलोचक की विशेषता, विषय का गहन अध्ययन, सूक्ष्म विश्लेषण, भाषा की सहजता और बोधगम्यता है. राजेन्द्र यादव या मन्नू भण्डारी की किसी कृति पर आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने से पूर्व उन्होंने उसके कथानक की विस्तार से चर्चा की है. ऐसा उन्होंने इन दोनों कथाकारों के साथ ही नहीं किया, आवश्यकतानुसार प्रत्येक कृति के साथ करते हैं, यही विशेषता उन्हें अन्य आलोचकों से अलग करती है. उनके आलोचना को मैं रचनात्मक आलोचना मानता हूं. जैसाकि लिखा कि वह बह-पठित आलोचक हैं, उन आलोचकों से अलग जो किसी कृति के आगे-पीछे के पृष्ठ पढ़कर अपने विचार प्रस्तुत कर देते हैं. आज ही नहीं सदैव आलोचक किसी न किसी गुट का शिकार रहे, लेकिन मधुरेश जी निष्पक्ष और निरपेक्ष आलोचक हैं. उनके लिए कृति महत्वपूर्ण होती है, व्यक्ति या परिचय नहीं. उनकी एक और विशेषता है उनकी विनम्रता. उनकी विनम्रता भी उन्हें दूसरे आलोचकों से अलग करती है. संस्कृत का निम्न श्लोक उन जैसे विद्वानों के लिए लिखा गया होगा-

"नमन्ति फलिनः वृक्षाः, नमन्ति गुणिनः जनाः, शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचनः ।"

एक लेख में पहले भी लिख चुका हूं कि उनसे मेरा परिचय हृदयेश जी के माध्यम से 1994 में हुआ था, 'रमला बहू' उपन्यास पर लिखने को लेकर, मेरे पत्र के उत्तर में मधुरेश जी का 16.08.1994 का पहला पत्र मिला था, जिसमें उन्होंने उपन्यास भेजने के विषय में लिखा था. मैंने उपन्यास भेजा जिसके मिलने की सूचना उन्होंने 26 अगस्त, 1994 के पत्र द्वारा दी:

"प्रिय भाई.

आपका पत्र मिला था. उसकी आत्मीयता अच्छी लगी. कल आपका उपन्यास भी मिल गया है मेरा धन्यवाद लें. कोशिश करूंगा कि उस पर कहीं लिख सकूं.

मैं कई कामों में बंट गया हूं. पिछले दिनों 'राहुल का कथा-कर्म' नामक पुस्तक पूरी करके प्रकाशक को दी है. उसके अनेक निबंध संकलनों में राहुल संबन्धी विशेषांकों में आए हैं. 'सर्वनाम' (विष्णुचन्द्र शर्मा, दिल्ली) के लिए नागर-अंक का संपादन कर रहा हूं. उसी सीमित कलेवर में. 'नयी कहानी: पुनर्विचार' नामक पुस्तक सिर्फ एक लेखक के कारण काफी समय से रुकी है. उसे करना चाहता हूं. नागर जी पर मेरी किताब भी आधी से अधिक हो गयी है.

और सब ठीक है. ठीक होंगे.

सस्नेह,

आपका

मध्वेश

मधुरेश जी की जो सक्रियता आज है वह उन दिनों भी थी जब वह प्रोफेसर थे. यदि मैं गलत नहीं तो अध्यापन से जुड़े शायद वह डॉ. रामविलास शर्मा के बाद दूसरे आलोचक थे जिनके लिए अध्यापन जीविका का साधन मात्र या साध्य तो लेखन ही था और आज भी वह अपनी उसी ऊर्जस्विता के साथ कार्यरत हैं. उनसे पहली मुलाकात 8 अक्टूबर, 1994 को हुई. उस दिन मैं उनके साथ राजकमल, वाणी और हंस गया था, लेकिन इन सबके यहां जाने का समय ऐसा था कि तीनों में से कोई हमें नहीं मिला. राजेन्द्र यादव के बारे में मुझे पहले से ही जानकारी थी कि वह दो बजे के लगभग आते थे. यह बात मैंने मधुरेश जी को बतायी भी, लेकिन वाणी प्रकाशन से किताबघर (अब किताबघर प्रकाशन) जाते हुए हंस कार्यालय बीच में पड़ता था इसलिए, 'शायद राजेन्द्र यादव गलती से उस दिन पहले आ गए हों सोचकर हम गए थे. वास्तव में मधुरेश जी को किताबघर के श्री सत्यव्रत शर्मा से मिलना था. उनके यहां से ही 'राहुल का कथा-कर्म' पुस्तक प्रकाशित हो रही थी.

अंततः हमने दरियागंज के एक रेस्टॉरेंट में चाय पी थी. याद आ रहा है कि उनके साथ अनुराग थे. मेरे माध्यम से उनकी एक आलोचना पुस्तक के प्रकाशन की बात 'प्रवीण प्रकाशन (तब महरौली, अब दरियागंज, नई दिल्ली) से हुई थी. मधुरेश जी ने पाण्डुलिपि भी उन्हें भेज दी. पाण्डुलिपि से संबन्धित मधुरेश जी का 23 अप्रैल, 1999 का पत्र-

प्रिय भाई,

आपका 20 अप्रैल का पत्र मिला. धन्यवाद. श्री श्रीकृष्ण गुप्त को पत्र मैंने पन्द्रह-बीस दिन पहले लिखा था. कोई उत्तर आने पर ही आपको लिखा, मेरे यहां फोन नहीं है. अब बरेली पहुंचकर

3

लगवाऊंगा. मैंने शायद आपको लिखा हो, 20 मई तक यहीं हूं, उसके बाद बरेली चला जाऊंगा. कहीं और भी निकलना हो सकता है. इसीलिए चाहता था कि यहां रहते ही आनुबंध वाली कार्यवाई हो जाती. कुछ जरूरी काम यहीं निबटाना चाहता हूं. उसी क्रम में भैरव प्रसाद गुप्त पर एक मोनोग्रफ साहित्य अकादमी को भेजवाया है इसी सप्ताह.

मेरा समय या तो कॉलेज में चल रही परीक्षाओं में जा रहा है या फिर समेटा समेटी में. किताबें बहुत होने से उनका बांधना-सहेजना सबसे मुश्किल है. लिखने-पढ़ने वाली मानसिकता अब बरेली में सुस्थिर होकर ही आ पाएगी.

अब मुक्त अनुभव कर रहा हूं. एक बार दिल्ली आने का मन भी है. लेकिन अभी वह संभव दीखता नहीं है. यदि पहले यह नहीं हुआ तो फिर अगले वर्ष फरवरी में पुस्तक मेला के अवसर पर तो आऊंगा ही.

आप ठीक होंगे.

आप गुप्त जी से कृपया पत्र लिखवाकर ही अपनी बात कहने को कहें और आनुबंध भेजवाने को भी.

सस्नेह,

आपका-

मधुरेश

किन्हीं कारणों से पाण्डुलिपि प्रवीण प्रकाशन से प्रकाशित नहीं हुई. उन्हीं दिनों 'नयी कहानी: पुनर्विचार' नेशनल पब्लिशिंग हाउस से प्रकाशित हुई थी, जिसे वहां से प्राप्त करने के लिए मधुरेश जी ने लिखा था. यह वह दौर था जब प्रकाशक आज जितना व्यवसायी नहीं हुआ था. उन दिनों मैं राजकमल और राजपाल एण्ड सन्स को समीक्षार्थ कोई कृति भेजने के लिए लिखता और वे भेजते थे. मैंने नेशनल को लिखा और पुस्तक मुझे मिली, जिस पर स्वतंत्र समीक्षा तो मैं नहीं लिख सका, लेकिन अपने साहित्यिक आलेखों में मैंने उसके उद्धरणों का पर्याप्त उपयोग किया.

मधुरेश जी प्रखर आलोचक के साथ सशक्त संस्मरण लेखक भी हैं. 'दोआबा' में धारावाहिक उनके संस्मरण प्रकाशित होते रहे हैं. उन्होंने जिस पर भी लिखा बहुत ही आत्मीय और बेलाग भाव से लिखा है. 'तोता मैना की कहानी' का प्रारंभिक लेख राजेन्द्र यादव पर उनका लंबा संस्मरण लेख ('राजेन्द्र यादव: भोलानाथ उर्फ चारा काटने की मशीन') है, जिसमें उन्होंने राजेन्द्र यादव से परिचय से लेकर संस्मरण लेख लिखे जाने (संभवतः 1998) तक की घटनाओं का अविस्मरणीय विवरण प्रस्तुत किया है. उन्होंने राजेन्द्र जी का 'शह और मात' उपन्यास सबसे पहले पढ़ा और अपनी डायरी में जो दर्ज किया उसको आधार बनाकर उन्होंने लिखा, "तब भी हिन्दू संस्कृति को

4

वह सब कहीं 'गोबर संस्कृति' कहकर उसकी भर्त्सना करते हैं. बेहद जेहादी स्वर में, अपने पुरखें को वे 'क्लीव' और नपुंसक कहकर याद करते हैं- अतिकथन और बड़बोलेपन के बावजूद सच को बयान करने का उनका यह जेहादी और आक्रामक तेवर कहीं-कहीं अच्छा भी लगता था." (9)

इन दिनों मधुरेश जी शरच्चन्द्र पर कार्य कर रहे हैं। शायद 'शह और मात' में शरच्चन्द्र पर राजेन्द्र यादव द्वारा की गयी टिप्पणीयों ने उनके मन में तभी शरत पर कुछ करने का भाव पैदा किया होगा, यह मेरा अनुमान है। हालांकि राजेन्द्र यादव का वह उपन्यास 1960 में प्रकाशित हुआ था और छह दशक से अधिक का समय बीत चुका है। इस दौरान मधुरेश जी ने यशपाल, राहुल, नागर आदि कितने ही साहित्यकारों पर कार्य किया है। लेकिन संभव है शरच्चन्द्र पर कुछ करने का मन में दबा भाव राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी पर 'तोता मैना की कहानी तैयार करते समय पुनः उभर आया हो। राजेन्द्र यादव के अपने संस्मरण लेख में उन्होंने लिखा, "शह और मात' के पसन्द न आने के और भी कारण रहे होंगे, लेकिन आज भी जिसकी याद है, वह शरच्चन्द्र के विरुद्ध की गयी टिप्पणीयां थीं, जो पात्र की होकर भी लेखक की ही थीं। शरच्चन्द्र पर राजेन्द्र यादव की वे टिप्पणीयां कहीं, अनजाने ही हमारे सम्बन्ध का आंकड़ा तय कर रही थीं। आज चालीस वर्ष बाद भी स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन आया नहीं लगता है।" (10)

राजेन्द्र यादव से अपनी पहली मुलाकात, उनके रहन-सहन, ठाठ-बाट का सटीक वर्णन है। जीवन के अंतिम दिनों में भी राजेन्द्र यादव के ठाठ-बाट में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, बल्कि शायद बढ़ती उम्र के साथ वह बढ़ा ही था। पहले स्वयं या मन्नू जी के साधन थे तो अंतिम दौर में 'घाघरा पलटन' (यह आप्त कथन ममता कालिया जी का है) द्वारा सब उपलब्ध करवाया जाता था। बुढ़ापे में उन्हें अपना जन्मदिन मनाने का शौक चढ़ा तो वह मृत्यु से एक-दो साल पहले तक जारी रहा था। आयोजन भी बिल्कुल फाइव स्टार, जिसमें लगभग दस वर्षों तक मैं भी शामिल होता रहा था। आयोजन को लेकर 'अकार' के एक अंक में गिरिराज किशोर ने अपने सम्पादकीय में तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।

यद्यपि राजेन्द्र यादव बहुत आत्मीय और व्यावहारिक थे, लेकिन कभी-कभी वह बहुत अप्रिय व्यवहार करते या कुछ ऐसा कह देते जो सामने वाले को चुभती थी। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख मधुरेश जी ने अपने संस्मरण लेख में किया है। राजेन्द्र यादव ने उन्हें कहा, "मधुरेश जी, अब देवीशंकर अवस्थी नहीं हैं आपके लिए मैदान साफ़ है उनकी यह टिप्पणी देवीशंकर अवस्थी ही नहीं, अपने प्रसंग में भी पर्याप्त कूड़ लगी थी-वीभत्स और संवेदनहीन।" (14)

एक सम्पादक के रूप में राजेन्द्र यादव तानाशाह सम्पादक के रूप में हिन्दी साहित्य में जाने जाते रहे. जिन्हें पसंद करते उनकी रचना मिलने के अगले अंक में प्रकाशित होती जबकि कितने ही लोगों की रचनाएं तीन-चार सालों तक फाइल में दबी रहती थीं. "जनतन्त्र और समतावादी आन्दोलनों, स्त्री-विमर्श और दलित चेतना, के सारे कौआ-रोर के बावजूद राजेन्द्र यादव एक तानाशाह सम्पादक बनकर सामने आते हैं. उनकी अपनी बुढ़भस और कुण्ठाएं 'हंस' में क्या गुल खिलाती हैं, इसका प्रमाण स्त्री-विमर्श के नाम पर उनकी देहवादी भूमिका से समझा जा सकता है." (19)

5

राजेन्द्र यादव पर मधुरेश जी का यह संस्मरण लेख राजेन्द्र जी के जीवनकाल में ही लिखा गया था. इतनी साफगोई के साथ मधुरेश जी जैसा स्पष्टवादी और निरपेक्ष लेखक ही लिख सकता था, वह तब जब राजेन्द्र जी के इर्द-गिर्द युवा और बड़े लेखक-आलोचक हंस में प्रकाशित होने के लिए उनकी कृपादृष्टि पाने को उनका यशगान करते थे. उन्हें हिन्दी साहित्य का 'खलनायक' या 'डॉन' की उपाधि ऐसे ही लोगों ने चाटुकारिता प्रकट करने के लिए दी थी. 'हंस' में अपनी किसी चहेती लेखिका की किसी पुस्तक की एक ही अंक में तीन समीक्षाएं प्रकाशित करने वाले राजेन्द्र यादव मधुरेश जी की पुस्तक की समीक्षा के बारे में जब यह तर्क देते हैं, "यार, समीक्षक किताब दबाये बैठा है" तब बात मधुरेश जी के गले नहीं उतरती. किसी को ना प्रकाशित करने के लिए वह कोई न कोई ऐसा तर्क गढ़ लेते, जो लेखक के गले नहीं उतरता था.

प्रारंभिक दौर में हंस में वह अराजकता नहीं थी जो चार-पांच वर्षों बाद दिखाई दी. राजेन्द्र यादव की जिस लोकतांत्रिकता की बात कुछ लोग करते हैं वह प्रारंभ में अवश्य थी. यदि ऐसा नहीं रहा होता तो मुझ जैसे लेखक की कहानी (मई, 1987) नहीं प्रकाशित हुई होती, लेकिन कुछ लेखिकाओं और ओमप्रकाश बाल्मीकि जैसे औसत दर्जा और जातिवादी लेखकों को आगे बढ़ाने के मोह में राजेन्द्र जी का लोकतंत्र ढहता गया था. कितनी ही बार ऐसा अनुभव हुआ कि वहां रचनाएं नहीं रचनाकार पर ध्यान दिया जाता था और इस मामले में वह कुछ लोगों के प्रभाव में थे. मधुरेश जी ने अपने लेख, 'राजेन्द्र यादव और उनका 'हंस' में लिखा, "राजेन्द्र यादव ने भैरव प्रसाद गुप्त की तरह पत्रिका में सन्तुलन साधने की चिन्ता नहीं की. निर्मल वर्मा, भैरव प्रसाद गुप्त के बहुत पसन्द के लेखक नहीं थे, लेकिन 'कहानी' में उनकी ढेरों कहानियां भैरव ने प्रकाशित कीं." (139)

'तोता मैना की कहानी' में मधुरेश जी ने राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के उपन्यासों, और कहानियों पर गंभीर चर्चा की है। 'सारा आकाश: रचनात्मकता का दोराहा', 'उखड़े हुए लोग: परिवेश और मूल्य-दृष्टि', 'राजेन्द्र यादव की कहानियां', 'स्वाधीनता का सपना अर्थात् कथा-जगत की बागी मुस्लिम औरतें' (मुख्य सम्पादक-राजेन्द्र यादव), 'आपका बंटी': सही पते पर पहुंची चिट्ठी', 'महाभोज का महत्व', 'सवाल पूछती 'एक कहानी यह भी', 'मन्नू भण्डारी की कहानियां', 'एक इंच मुस्कान: एक कथा-प्रयोग के पीछे का सच', 'राजेन्द्र यादव और उनका 'हंस', 'भारतीय मध्यवर्ग और राजेन्द्र यादव के उपन्यास' पर उनके लेख उन रचनाओं को समझने की दृष्टि देते हैं। 'राजेन्द्र यादव: भोलानाथ उर्फ चारा काटने की मशीन' के बाद पुस्तक का दूसरा आकर्षक लेख 'तोता मैना की कहानी' है, जिसमें राजेन्द्र यादव पर अनेक लेखिकाओं के लेखों/संस्मरणों के उद्धरण देते हुए मधुरेश जी ने अपनी बात कही है। अंत में मधुरेश जी को लिखे राजेन्द्र यादव के पत्र हैं। पत्र किसी भी व्यक्ति को समझने में बहुत सहायक होते हैं।

'तोता मैना की कहानी' में मधुरेश जी ने राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के मिलने का संक्षेप में वर्णन करते हुए लिखा, "मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव अपने स्वभाव में विपरीत ध्रुवा पर खड़े व्यक्ति हैं। मन्नू के रचनात्मक जीवन में जो गतिरोध आया उससे उबरने की वे निरन्तर कोशिश करती रहीं।" (177) दोनों के बीच गतिरोध के कारणों पर हिन्दी साहित्य में विस्तार से चर्चा हो

6

चुकी है और होती रहेगी। प्रमोद त्रिवेदी को दिए साक्षात्कार में मन्नू जी ने कहा, "हां, तो कल मैंने तुम्हें बताया था न कि क्यों हो गयी मेरी ऐसी स्थिति, इसका मेरे पास अपना एक विश्लेषण है। इस सबकी नींव में मेरे और राजेन्द्र के सम्बन्ध ही तो हैं। जिस व्यक्ति से मैंने सबसे ज्यादा मान्यता, अपनत्व और स्नेह चाहा, वहीं से मिली उपेक्षा।" (178)

'मुड़-मुड़कर देखता हूं' में राजेन्द्र जी ने सिलसिलेवार नहीं, बल्कि टुकड़ों में आत्मकथ्य लिखा है, जिसमें अपने कुछ विचलनों की उन्होंने खुलकर चर्चा की है। यदि मैं गलत नहीं तो वह महान रूसी लेखक फ्योदोर मिखाइलोविच दॉस्तोएव्स्की की तरह यौन कुण्ठा का शिकार थे। जिन्दगीभर वह

भटकते रहे, उस के अंतिम पड़ाव तक. राजेन्द्र यादव के जीवन में अनेक रूपों में अनेक महिलाएं थीं.
"(179)

मैंने दॉस्तोएव्स्की की मौलिक जीवनी 'दॉस्तोएव्स्की के प्रेम' लिखी है. अन्ना बिगोरोव्ना से विवाह से पहले तक वह किस प्रकार महिलाओं के पीछे दौड़ते रहे यह सब है उसमें. उनका मित्र बैरन अलेक्जेंडर बैंगल ने उनके साइबेरिया प्रवास पर इस बारे में अच्छा प्रकाश डाला है. सो ही महान रुसी लेखक तोलस्तोय का जीवन था. पुश्किन, पिकासो, रुसो, मार्क्सेज, बाल्जाक, मौपासा-लंबी सूची है ऐसे महान साहित्यकारों और कलाकारों की, स्त्री जिनकी कमजोरी रहीं. 'तो क्या महान साहित्यकारों/कलाकारों का जीवन ऐसा ही होता है।' यह कहना शायद अतिशयोक्ति है. मैक्सिम गोर्की जैसे भी थे.

राजेन्द्र यादव चेखव से प्रेरित थे और चेखव का जीवन दॉस्तोएव्स्की और लेव तोलस्तोय जितना नहीं, लेकिन कुछ हद तक प्रेम-मय रहा था कुछ वर्षों में ही राजेन्द्र यादव ने 'हंस' की लाकल पहचान ली थी और उसके बाद उन्होंने मुड़कर नहीं देखा. अपनी कहानी की राजस्थान की एक पाठिका द्वारा यह इच्छा प्रकट करने पर कि वह उनसे एक सन्तान चाहती है, वह अटैची उठा वहां पहुंच गए थे. (मुड़-मुड़कर देखता हूं.). राजेन्द्र यादव पर मृदुला गर्ग के लेख की चर्चा करते हुए मधुरेश जी लिखते हैं, "1938 में जन्मी मृदुला गर्ग राजेन्द्र यादव से कोई नौ साल छोटी हैं. वे इस असमंजस से अपनी बात शुरू करती हैं, "चिर युवा या बालकी" राजेन्द्र यादव से उनके संबन्धों के अनेक रूप और स्तर हैं." (192)

'तोता मैना की कहानी' में मधुरेश जी ने 23 लेखिकाओं और राजेन्द्र यादव' पुस्तक को आधार बनाकर कई लेखिकाओं के कथन को उद्धृत किया, जिनकी सहानुभूति मन्नू जी के साथ थी. पुस्तक में संकलित प्रभा खेतान के लेख का एक विस्तृत अंश देते हुए मधुरेश जी ने अंत में लिखा, "राजेन्द्र यादव की ही आत्मस्वीकृतियां और स्त्री-प्रसंग उनकी असहज अपंगता के बीच, अनेक जगह प्रभा खेतान के इस विश्लेषण के विरोध में जाता है." (189) हाल में एक वरिष्ठ पत्रकार और लेखक ने राजेन्द्र यादव की यौन कुण्ठा पर अपने लेख में प्रभा खेतान और उनके संबन्धों की चर्चा की है. कुछ

वर्ष पहले लहक डिजिटल ने कोलकाता के दिवंगत कवि ध्रुवदेव मिश्र पाषाण जी से बातचीत की थी, जिसमें पाषाण जी ने कहा था कि तीन वर्षों तक वह प्रभा खेतान के लिए कार्य करते रहे

थे. उनका कहना था, "प्रभा जी के पास विचार बहुत अच्छे थे, लेकिन उनके पास भाषा नहीं थी." फिर भी उन्होंने सार्ज पर शोधकार्य किया था और सिमोन द बोऊआ की 'द सेकंड सेक्स' का अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया था. सोफिया अन्द्रेएन्ना की डायरी का अनुवाद भी उन्होंने किया था. अनुवाद तो मौलिक लेखन से भी कठिन कार्य है, वह सब कैसे किया था यह विचारणीय है. 20 मार्च, 2013 को मन्नू जी ने प्रभा खेतान के लेखन पर मेरे एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि इस बारे में वह विस्तार से लिखेंगी, लेकिन लिख नहीं सकी थीं.

एक वाक्य में इस पुस्तक के विषय में यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के साहित्य और व्यक्तित्व पर केन्द्रित अब तक के अन्य कार्यों की अपेक्षा 'तोता मैना की कहानी' कहीं अधिक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है.

कहानी - शेर की जाति

मुकेश कुमार

शोधार्थी, हिंदी - विभाग

गुरु नानक देव विश्विद्यालय, अमृतसर (पंजाब)

मोबाइल - 9646258038

"महाराज की जय हो, महाराज की जय हो।" सभी पशु पक्षी अपने राजा शेर की जय जयकार करने में लगे हुए थे। बहुत बड़ी जन सभा लगी हुई थी। कुछ को पता था की जयकार किसकी हो रही थी तथा कुछ को मालूम भी नहीं था की जयकार किस लिए और क्यों हो रही थी। बात दरहसल ये थी कि आज शेर को राजा बने पूरे पच्चीस साल हो चुके थे। 55 वर्ष का राजा शेर इस बात से काफी खुश था। उसके मंत्री गीदड़, सियार, भेड़िया, लोमड़ी सब उसकी जय जयकार लगा रहे थे और आम जनता गाय, खरगोश, हिरण, भालू, मोर से उनकी जय गान करवा रहे थे। राजा अपनी सभा में भाषण दे रहा था की मेरे राज्य में सब सुखी है। जंगल, जमीन, पशु, पक्षी किसी को भी कोई समस्या नहीं है। जबकि आधे से ज्यादा जानवर इस बात से दुखी थे कि शेर का तो जंगलराज चल रहा है। शेर अपनी मर्जी से जिसे चाहे खा जाता है, मंत्री सभी चापलूस और भ्रष्ट हैं जो किसी भी मामले को रिश्तत लेकर उसी समय रफा दफा कर देते हैं।

दो बंदर आपस में बात कर रहे थे कि "एक दिन मैंने बड़ी मेहनत से पेड़ से आम तोड़ इकट्ठे कर हाथ मुंह धोने के लिए गया तभी देखा की भालू मजे से मेरे आम खा रहा था। मैंने तुरंत जाकर उसे कहा कि भाई ये मेरे आम हैं, तो भालू बोला "नहीं इसे पहले मैंने देखा तो ये मेरे हुए। बात जब हाथा पाई तक पहुंच गई तो जंगल की पुलिस हम दोनों को कोतवाली ले गई जहां कानून मंत्री लोमड़ी हमारी दलीलें सुन रहा था। लंच टाइम होने पर उसने फैसला खाना खाने के बाद करने को कहा। तभी इसी बीच भालू मंत्री लोमड़ी को 50 आम रिश्तत में देने को राजी हो गया। फिर भईया होना क्या था फैसला मेरे विरुद्ध गया। मेरे आम भी गए ऊपर से एक महीने की जेल भी।" इसी प्रकार हिरण के झुंड में बात चल रही थी की "क्या बताएं भईया इस जंगलराज में हमारी बहु बेटियां कहा सुरक्षित हैं। पिछले एक महीनों से हिरणियां जल पीने जाती हैं तो बाघ या सियार उन्हें उठा कर ले जाते हैं उसके बाद उनका कुछ अता पता नहीं चलता।" सभी जानवरों के दल अपने अपने झुंडों में अपनी अपनी सब समस्या बता रहे थे। इन्हीं के बीच में एक युवा हाथी इन सब की बातों को ध्यान से

सुन रहा था। शेर ने अपना भाषण जब खत्म किया तो सभी ने तालियां बजाईं। हाथी तभी जोर से बोला "ये कैसा जंगलराज है। जहां इतना अन्याय हो रहा है और आप तालियां बजा रहे हैं। रिश्ततखोरी और अपहरण बढ़ रहे हैं। जीव जंतुओं की जाने खतरे में हैं। महाराज आप समझते हैं सब ठीक है ये तो सरासर जंगलराज है।" शेर काफी चतुर और मंझा हुआ राजनीति का खिलाड़ी था। उसे पता थे विरोध करने वाले को कैसे खत्म करना है। शेर ने कहा "बेटा अगर ऐसा है तो सच में मुझे इस बात का दुख है और मैं अभी अपने सभी मंत्रियों को निर्देश देता हूं की सब कुछ ठीक करे। अब खुश!" पर युवा हाथी इस पर माना नहीं। उसने कहा "जंगल में अब राजतंत्र नहीं लोकतंत्र चलेगा। राजा का बेटा राजा नहीं बनेगा। जंगल में राजा का चुनाव होना चाहिए।"

शेर ने कहा "अगर सारे जंगल की जनता ये मानती है की जंगल में चुनाव हो तो मैं जरूर चुनाव करवा कर इन्हे एक अच्छा राजा प्रदान करूंगा।" अंत में सभी जंगल के जानवरों, पशु, पक्षियों ने चुनाव की मांग की। राजा ने घोषणा की कि अगले महीने चुनाव होंगे। एक महीने का समय दिया जाएगा उम्मीदवार को अपना चुनाव प्रचार करने का। इसी के साथ सभा समाप्त हुई।

अगले दिन युवा हाथी राजा के प्रत्याक्षी के तौर पर जंगल के चुनाव आयुक्त उल्लू के पास गया और अपना नामांकन भरा उसी के बाद शेर भी अपना नामांकन पत्र दाखिल करने आया। दोनों प्रत्याक्षी अपने अपने चुनाव प्रचार में जुट गए। हाथी ने सभी जानवरों में जाकर जंगल के अच्छे वातावरण करने, जंगल को भयमुक्त करने तथा दोषियों को चौबीस घंटे में सजा देने का वादा किया। बच्चों के लिए शिक्षा के केंद्र खोलने का वादा किया। लोगो की शिकायतें सुनी और उनका निवारण करने का वचन दिया।

शेर ने भी अपना चुनाव प्रचार शुरू किया। शेर पहले बिल्लियों के समूह में गया उसने सिर्फ इतना ही कहा "मैं आपका ही सेवक हूं। क्योंकि शेर बिल्लियों की जाति के ही है, आप मेरी मूंछें और कान देखे। आप तो मेरी मौसी लगती हो।" बिल्लियां भावना में बह गई और शेर को वोट डालने का वादा किया। उसके बाद शेर चीते के समूह में गया वहा जाकर उसने कहा "मैं तो आपकी जाति का ही हूं क्योंकि मैं भी आप जैसे ही निडर और ताकतवर हूं। आप को भी मांस पसंद है और मुझे भी।" इसके बाद शेर बंदरों के झुंड में गया और कहा "मामा जी चरण वंदना, अपने भांजे को आशीर्वाद दे और मुझे विजय बनाएं। अगर आपका भांजा जीतेगा तो आपकी ही वाह वाही होगी।" शाम को शेर भालुओं के समूह में जब पहुंचा तो कहा "विद्वानों की इस सभा में मेरे जैसे अल्पज्ञानी का नमस्कार" तभी भालुओं के सरदार ने कहा "अरे महाराज ये क्या कह रहे आप" तो शेर ने कहा "अरे नहीं काका आप लोग बुद्धिमान हैं मैं भी आपकी जाति का ही हूं क्योंकि मुझमें भी आपके जैसे बुद्धिमता के गुण हैं।" इसी तरह चुनाव प्रचार करते करते रात हो गई। शेर ने अपने निजी सचिव गीदड़ को कहा की "जाओ भेड़ियों और सियारों के झुंडों में मांस और हड्डियां मुफ्त में बांट आओ और कहना की ये दावत रोज चलेगी और अगर हमारे महाराज जीत गए तो प्रतिदिन दावत देंगे। परंतु वोट उन्हें ही देना।"

चुनाव का दिन आ जाता है। सभी जानवर वोट देने के लिए कतार बनाए मतगणना केंद्र के अंदर जा रहे हैं और अपना वोट डालकर आ रहे हैं। शेर और हाथी दोनों बाहर खड़े अपने अपने पंडाल में सब को देख रहे हैं। जो भी वोट देकर आता हाथी की प्यारी सी मुस्कान देकर और शेर को नमस्कार करके चला जाता। शाम 4 बजे वोट डालनी बंद हुई तथा 6 बजे तक मत गणना हुई। दोनों प्रत्याक्षी एक दूसरे का चेहरा देख रहे थे। हाथी थोड़ा सा सहमा हुआ था और शेर बेफिक्र था। ठीक 7 बजे चुनाव आयुक्त उल्लू महाशय नतीजा लेकर बाहर आए। उन्होंने घोषणा की कि कुल 1265 वोट पड़े जिनमें जन सेवा पार्टी के प्रत्याक्षी हाथी जी को 525 मत प्राप्त हुए जबकि राजतंत्र पार्टी के प्रत्याक्षी शेर जी को 740 मत प्राप्त हुए। इस प्रकार शेर जी इस चुनाव में विजय हुए और जंगल के राजा चुने जाते हैं।

परिणाम सुनते ही शेर के चमचों ने 'महाराज की जय हो, महाराज की जय हो' तथा 'जो हमसे टकराएगा, मिट्टी में मिल जाएगा' के जयघोष लगाए। शेर भी हाथी को देखता मूँछ पर ताव देते हुए अकड़ से निकल गया। हाथी इस नतीजे से काफी आहत हुआ और कहने लगा "आज राजतंत्र के सामने लोकतंत्र हार गया। मुझे इस बात का दुख नहीं कि मैं हार गया बल्कि दुख इस बात का है कि शेर ने जाति, भ्रष्टाचार और रिश्तों के बल पर वोट खरीदे और जीत गया।" उसे जंगल की उन जानता पर भी गुस्सा और दुख हुआ जिन्होंने अपनी जाति की भावना में बह कर और रिश्तों लेकर वोट दिए। अंत में वह जंगल छोड़ कर हमेशा के लिए चला जाता है और जाते जाते सिर्फ इतना ही कहता है "विपरीत बुद्धि, विनाश काले"।

आत्मचिंतन क्यों आवश्यक है?

मंजुला शर्मा
सहायक प्रोफेसर
कन्या महाविद्यालय
जालंधर

वर्तमान समय का मनुष्य अभूतपूर्व प्रगति और तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। विज्ञान, तकनीक और भौतिक सुविधाओं ने जीवन को सरल तो बनाया है, परंतु इसके साथ ही मनुष्य के भीतर अशांति, तनाव और असंतोष भी बढ़ा है। इस बाहरी चकाचौंध में व्यक्ति अपने भीतर झांकने की क्षमता खोता जा रहा है। ऐसे समय में आत्मचिंतन का महत्व अत्यंत बढ़ जाता है, क्योंकि यही वह प्रक्रिया है जो हमें अपने वास्तविक स्वरूप से परिचित कराती है और जीवन को संतुलित दिशा प्रदान करती है।

आत्मचिंतन का आशय है—अपने विचारों, भावनाओं, व्यवहार और जीवन के उद्देश्यों का गंभीरता से विश्लेषण करना। यह आत्ममंथन की वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति स्वयं से संवाद करता है। जब हम अपने भीतर झांकते हैं, तब हमें अपने व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान होता है—हमारी शक्तियाँ, हमारी कमजोरियाँ, हमारी आकांक्षाएँ और हमारे लक्ष्य। इस प्रकार आत्मचिंतन हमें आत्मबोध की ओर ले जाता है, जो जीवन की सफलता का आधार है।

आत्मचिंतन का एक प्रमुख लाभ यह है कि यह हमें अपनी त्रुटियों को पहचानने और उन्हें सुधारने का अवसर प्रदान करता है। सामान्यतः मनुष्य अपनी असफलताओं के लिए परिस्थितियों या अन्य व्यक्तियों को दोषी ठहराता है, किंतु आत्मचिंतन के माध्यम से वह अपनी कमियों को स्वीकार करता है। यह स्वीकारोक्ति ही सुधार की दिशा में पहला कदम होती है। इस प्रकार आत्मचिंतन व्यक्ति को निरंतर आत्मविकास की ओर अग्रसर करता है।

इसके अतिरिक्त, आत्मचिंतन मानसिक शांति और स्थिरता प्रदान करता है। जब व्यक्ति अपने

विचारों और भावनाओं को समझने लगता है, तो उसके भीतर का द्वंद्व धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है। वह तनाव, चिंता और भय से मुक्त होकर एक संतुलित जीवन जीने में सक्षम होता है। आत्मचिंतन के माध्यम से व्यक्ति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है, जिससे उसके जीवन में संतोष और आनंद की अनुभूति बढ़ती है।

आत्मचिंतन नैतिक मूल्यों के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हमें यह समझने में सहायता करता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित।

जब व्यक्ति अपने कर्मों का मूल्यांकन करता है, तो उसमें जिम्मेदारी और अनुशासन की भावना विकसित होती है। वह अपने कर्तव्यों के प्रति अधिक सजग और ईमानदार बनता है। इस प्रकार आत्मचिंतन न केवल व्यक्तिगत विकास में सहायक है, बल्कि सामाजिक समरसता और नैतिकता को भी सुदृढ़ करता है।

आत्मचिंतन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह हमें सही निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करता है। जब व्यक्ति अपने अनुभवों और विचारों का विश्लेषण करता है, तो वह भविष्य के लिए अधिक स्पष्ट और विवेकपूर्ण निर्णय ले पाता है। इससे जीवन में भ्रम और अनिश्चितता कम होती है और सफलता की संभावना बढ़ जाती है।

आज के डिजिटल युग में, जब मनुष्य का अधिकांश समय मोबाइल और इंटरनेट पर व्यतीत होता है, आत्मचिंतन के लिए समय निकालना और भी आवश्यक हो गया है। यह हमें बाहरी प्रभावों से मुक्त कर हमारे भीतर की आवाज़ को सुनने की प्रेरणा देता है।

प्रतिदिन कुछ समय शांत वातावरण में बैठकर अपने दिनभर के कार्यों, विचारों और अनुभवों पर विचार करना आत्मचिंतन की एक सरल और प्रभावी विधि है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी आत्मचिंतन का विशेष महत्व है। एक शिक्षक के लिए आत्मचिंतन उसके शिक्षण को प्रभावी बनाने का माध्यम है, वहीं विद्यार्थियों के लिए यह आत्मविकास और लक्ष्य-निर्धारण का आधार बनता है। आत्मचिंतन के माध्यम से शिक्षा केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण का साधन बन जाती है।

निष्कर्षतः, आत्मचिंतन जीवन का एक अनिवार्य अंग है, जो हमें स्वयं से जोड़ता है और हमें एक जागरूक, संतुलित तथा सफल व्यक्ति बनने की दिशा में प्रेरित करता है। यह केवल एक विचार

प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सतत अभ्यास है, जिसे अपनाकर हम अपने जीवन को अधिक सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बना सकते हैं।

संदर्भ सूची (References):

शर्मा, रामनारायण — व्यक्तित्व विकास और आत्मचिंतन, दिल्ली: साहित्य प्रकाशन।

वर्मा, श्यामसुंदर — मानव मनोविज्ञान, आगरा: लोकभारती प्रकाशन।

गुप्ता, के.के. — नैतिक शिक्षा और जीवन मूल्य, जयपुर: विश्वविद्यालय प्रकाशन।

सिंह, रामधारी — जीवन दर्शन, प्रयागराज: हिंदी साहित्य सम्मेलन।

पाठक, ओमप्रकाश — आधुनिक जीवन और आत्मविकास, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

कहानी –माँ का त्याग

दामिनी
एम. ए हिन्दी
छात्रा

कॉलेज: हंसराज महिला महा विद्यालय, जालंधर

माँ त्याग है, तपस्या है, सेवा है।

माँ फूंक से ठंडा किया हुआ कलेवा है। भगवान हर स्थान पर हर समय स्वयं नहीं पहुंच सकते, इसीलिए उन्होंने माँ बनाई। हम कितना भी कुछ कर ले, लेकिन अपनी माँ के द्वारा किए गए त्याग और उनके दिए गए संस्कारों का ऋण कभी भी नहीं चुका सकते।

एक छोटे से गाँव में एक महिला रहती थी, जिसका नाम लक्ष्मी था। उसके दो बच्चे थे, एक बेटा और एक बेटी। लक्ष्मी के पति की मृत्यु हो गई थी, और वह अपने बच्चों को पालने के लिए संघर्ष कर रही थी।

लक्ष्मी के बेटे रोहन ने डॉक्टर बनने का सपना देखा। उसने माँ से कहा, "माँ, मैं बड़ा होकर डॉक्टर बनना चाहता हूँ।" लक्ष्मी ने अपने बेटे की आँखों में उम्मीद देखी और कहा, "बेटा, तुम्हारा सपना जरूर पूरा होगा।"

लक्ष्मी ने अपने बेटे की पढ़ाई के लिए पैसे जमा करने के लिए दिन-रात काम किया। उसने अपने लिए कुछ नहीं रखा, न कपड़े, न ज्वेलरी, न ही कोई और सुख-सुविधा। उसने अपना सब कुछ त्याग दिया, बस अपने बेटे के भविष्य के लिए।

वह सुबह से शाम तक खेतों में काम करती, और रात को घर आकर सिलाई का काम करती। उसकी मेहनत और लगन ने उसे कभी हार नहीं मानने दी। वह अपने बेटे के लिए एक बेहतर भविष्य बनाने के लिए दृढ़ थी।

रोहन ने अपनी माँ की मेहनत को देखा और उनकी कद्र की। उसने अपनी पढ़ाई में मेहनत की और अच्छे नंबरों से पास हुआ। आखिरकार, वह डॉक्टर बन गया।

जब रोहन ने अपनी माँ को अपनी सफलता की खबर सुनाई, तो लक्ष्मी की आँखों में आंसू आ गए। उसने अपने बेटे को गले लगाया और कहा, "बेटा, तुम्हारी सफलता मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है।"

रोहन ने अपनी माँ को धन्यवाद दिया और कहा, "माँ, आपके त्याग के बिना मैं यहाँ नहीं पहुँच पाता। आपकी मेहनत और प्यार ने मुझे डॉक्टर बनाया है।"

लक्ष्मी की कहानी हमें त्याग की महत्ता सिखाती है। वह हमें दिखाती है कि कैसे एक माँ अपने बच्चों के लिए अपना सब कुछ त्याग सकती है और उनकी खुशी के लिए काम कर सकती है।

रोहन ने अपनी माँ के त्याग को कभी नहीं भूला। उसने अपनी माँ के लिए एक अच्छा घर बनाया और उनकी देखभाल की। लक्ष्मी ने अपने बेटे की खुशी में अपनी खुशी पाई और अपने त्याग को सार्थक माना।

समय बीतता गया, और रोहन एक सफल डॉक्टर बन गया। उसने गरीबों की सेवा करने का फैसला किया और अपने गाँव में एक अस्पताल खोला। लक्ष्मी ने अपने बेटे की इस पहल को देखा और गर्व महसूस किया।

लक्ष्मी की कहानी ने गाँव के लोगों को प्रेरित किया। उन्होंने अपनी माँओं के त्याग को पहचाना और उनकी कद्र की। गाँव में एक नई जागरूकता आई, और लोगों ने अपने परिवार के लिए त्याग करने के महत्व को समझा।

लक्ष्मी की कहानी एक प्रेरणा बन गई, जो लोगों को त्याग और मेहनत के महत्व को सिखाती है। वह हमें दिखाती है कि कैसे एक माँ अपने बच्चों के लिए अपना सब कुछ त्याग सकती है और उनकी खुशी के लिए काम कर सकती है।

वास्तव में मां त्याग की मूर्ति है मां के त्याग की देन का मूल्य चुकाना अत्यधिक कठिन है मां के त्याग के माध्यम से ही एक परिवार संगठित एवं विकसित होता है इसलिए मन के प्रति सदैव आदर का भाव रखना है उसके त्याग का मूल्य है

मौलिक रचना

(नोट – अखिल भारतीय हिन्दी परिषद, पंजाब द्वारा पंजाब स्तरीय कहानी प्रतियोगिता - 2025 तृतीय स्थान पर विजेता कहानी)

यादें

यादें
 आंसू बनकर
 आंखों से
 जब कागज़ पर गिरती हैं
 तो कितने
 धुंधले पड़ जाते हैं
 शब्द- चित्र
 एक दूसरे में
 गड़ु मड़ु होतीं
 बनती बिगड़ती
 आकृतियां....

लगता है -
 मुझे बांधने को
 बाहें फैलाए
 खड़े हो तुम....

पर अब
 मन की आंखें देखती हैं
 गीले हुए पन्नों पर
 तुम्हारे हाथ
 फैलते फैलते
 मेरे कंधों को छू गए हैं
 मैं सिहर जाती हूं
 फिर सुखाती हूं
 इन पन्नों को
 प्यार से तहाती हूं
 तुमसे दूर होकर भी
 तुम्हें अपने भीतर पाती हूं।
 सच -

यादें
 आंसू बनकर जब
 कागज़ पर गिरती हैं
 हम
 कितने
 करीब हो जाते हैं।

डा विनोद कालरा
 जालंधर, पंजाब

ढाई आखर प्रेम

सुनो!!!
 मेरी आंखें
 नहीं पढ़ सकतीं
 मेरा मन
 नहीं बूझ सकता
 स्थूल दृष्टि
 अचेतन मन की
 समझ से परे है
 तुम्हारे मन की
 किताब पर छपे
 शब्दों के गूढ़ अर्थ
 आओ मित्र -
 अब लिखना सीख भी जाओ
 ढाई अक्षर प्रेम वाला
 कोई नया शब्दकोश बनाओ।

डा विनोद कालरा
 जालंधर, पंजाब

" आत्म-अवलोकन "

समय के फेर ने पलट दीं सारी
 परतें जो कभी लज्जा का
 कहना था
 देखा उस घंघट को हटते हुए,
 पहले फटे कपड़े थे निधनता के सूचक
 अब फटी जीन्स ने बना ली है जगह
 अपनी यों वह नई पहचान का
 नई आज़ादी का बन गई
 प्रतीक, पर भीतर कहीं
 संस्कार अब भी करते हैं सवाल. . .

हे राम !
 तुम भी बदल गए हो ?
 अब नहीं आओगे मयादा सिखाने ?
 देखो न ! अब तो रश्ते—
 हो गए हैं 'ऑनलाइन रक्वेस्ट' जैसे
 नौकरी के बेहतर ऑफर की तरह
 बदले हुए और स्नेह सिर्फ 'इमोज़ी'
 में सिमट गया।

माँ की रसोई 'ऐप' में बसती है अब
 पिता की चुप्पी को 'स्टेटस' कहा
 जाता है बच्चे घर में नहीं, पलते हैं
 'स्क्रीन' पर 'अपडेट' की तरह ही आते
 हैं अब संस्कार. . .

हाँ, बदल ही गया है सब
कुछ पर दिल के किसी
कोने में बाक़ी है अब भी
एक उम्मीद कि इस
बदलाव की बयार में
चुपचाप देख रहा होगा कोई राम !
सांस ले रही होगी कहीं तो मानव-मयादा !!
प्रश्न है यही एक—
कब झाँकेगा मनुष्य अपने ही भीतर !!!

रमन कुमार शर्मा
सहायक अध्यापक
तिरनिटी कॉलेज जालंधर
raman.sharma18283@yahoo.com
9988835520

खुशियां

अक्सर खिले होठों के पीछे कई तूफ़ान होते हैं,
चमकती आंखों में भी कई अरमान रोते हैं।
जिन तस्वीरों में हम रंग भरते हैं,
वो ज़िंदगी के हर पन्ने पर नहीं होते।

किस्मत कभी मेहरबान
होकर थोड़े-सा चमत्कार
दिखा देती है, और वही
किस्मत
खामोशी से हमें कभी आजमाती है।

पर उम्मीद के छोटे-छोटे
दीये दिल के आंगन में जलते
रहने दो, तस्वीरों की
नहीं—
ज़िंदगी की मुस्कानें असलियत में खिलते रहने दो।

क्योंकि खुशियां किस्मत में होनी
चाहिए, वरना तस्वीरों में तो
सभी
मुस्कुराते नज़र आते हैं...

रमन कुमार शर्मा
सहायक अध्यापक
तिरिनिटी कॉलेज जालंधर
raman.sharma18283@yahoo.com
9988835520

दृष्टिकोण

सभ्य कहलाने वाले
 लोगों की दृष्टि संवेदना
 में भी तर्क खोजती है,
 दूसरों के आँसू
 कम के खाते में दर्ज
 करती हैं, वो उन
 पर उँगलियाँ
 उठाते हुए, यह भी
 कह देते हैं—

“उसके कम
 होंगे”, और
 अपने
 जख्मों पर
 ईश्वर से न्याय की
 गुहार लगाते हैं।
 उनकी अपनी वेदना
 जीवन की परीक्षा कहलाती है।

वो ये बात भूल जाते हैं
 कि पीड़ा का कोई धर्म
 नहीं होता, कोई

प्रमाण-पत्र नहीं,
वह बस पीड़ा
होती है—
चाहे किसी की
भी हो।

रमन कुमार शर्मा
सहायक अध्यापक
तिरुनिटी कॉलेज जालंधर
raman.sharma18283@yahoo.com
9988835520

शोध की राह में प्रश्न अनेक,
उत्तर की खोज निरंतर है।
तथ्यों से सत्य तक पहुँचने का,
यह प्रयास ही शोध का स्वर है।

ज्ञान की ज्योति जलती रहे,
चिंतन की धारा बहती रहे।
नवीन दृष्टि, नवीन विचारों से,
साहित्य की सृष्टि सजती रहे।

शब्दों में छिपे अर्थों को,
खोजने का यह प्रयास रहे।
आज का शोध बने कल की राह,
ज्ञान के दीप का सदा प्रकाश रहे।
